सुलभ साहित्य-माला १८

कविरत्न सत्यनारायणजी

की

जीवनी

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी

—❁—

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रथमवार १००० } संवत् १९८३ वि० { १)

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग



मुद्रक—
काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस, प्रयाग

Birth is a mystery, death is a mystery
Between them lies the tableland of life

"जनम मरन जग के रहस, जटिल गहन गम्भीर।
दुहुँ बिच जीवन उच्च भुवि, विविध कुतूहल भीर॥"

कृतज्ञता-प्रकाश



श्रीमान् बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पांच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा नरेश महोदय को है। श्रीमान् का यह हिन्दी प्रेम भारत के अन्य हिन्दी प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—

मन्त्री,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग।



श्रीमान् महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड, बड़ौदा-नरेश

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पांच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा नरेश महोदय को है। श्रीमान् का यह हिन्दी प्रेम भारत के अन्य हिन्दी प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—

मन्त्री,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग।

दो फूल

प्रिय प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के रचे हुए अपने मित्र के इस साहित्यिक श्राद्ध के अवसर पर उनकी स्वर्गीय आत्मा के चरणों में श्रद्धा के दो फूल मैं भी अर्पित करना चाहता हूँ।

कविरत्न प० सत्यनारायणजी का जीवन आदि से अन्त तक, सबाह्याभ्यन्तर, अत्यन्त मधुर था। मधुरता ही उनके जीवन का रहस्य है। आगरे में मेरा उनका तीन वर्ष तक घनिष्ट सत्सग रहा। ऐसा एक दिन भी नहीं बीतता था कि, जब वह शहर में आवें, और मेरे द्वार पर आकर मधुरता की आवाज न लगावें। चाहे जितनी जल्दी में हों, दो मिनट अपने सम्भाषण का सुख मुझे अवश्य दे जाते थे। उनका हृदय जितना कोमल था, उनके वचन और उनके कार्य भी उतने ही कोमल थे। तीन वर्ष के अन्दर मैंने उनको कभी क्रोधित होते हुए नहीं देखा। मेरा उनका मतभेद भी जब कभी उपस्थित होता, इतनी कोमलता से अपना रोष प्रकट करते कि उनके उस रोष में भी मैं रमणीयता का अनुभव करता था—उनके उस रूठने में मुझे एक प्रकार का आनन्द आ जाता था। उन्होंने अपने इस छोटे जीवन में

आनन्द, मधुरता और कोलमता एक क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ी। उनकी याद आते ही मुझे वेद का यह वचन याद आ जाता है —

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसदृशः ॥

इस वचन को भगवान ने उनके जीवन में स्वाभाविक ही चरितार्थ कर रक्खा था। उनकी मधुर मिलन की मूर्ति मित्रों की स्मृति से कभी न जायगी।

यदि रमणीयता ही कवित्व का लक्षण है, तो सत्यनारायण जी मूर्तिमान् कवित्व का अवतार थे। उनका बोलना-चालना हँसना, सब कवितामय था। उनका कोई कार्य कविता से ख़ाली नहीं था। ब्रजभाषा की कविता का तो—कम से कम अभी कुछ दिन के लिए जब तक कोई दूसरा वैसा कवि पैदा न हो—उनसे अन्त होगया। उनको "ब्रज कोकिल" कहना सदैव शोभा देगा।

इस ब्रजकोकिल का यह सुन्दर चरित्र हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होना हिन्दी-ससार के लिए सच-मुच ही बड़े सौभाग्य की बात है। परमात्मा इसके लेखक को यश दे!

लक्ष्मीधर वाजपेयी
साहित्य मन्त्री

चार आँसू



पंडित सत्यनारायण, सरलता की—विनय की—मूर्त्ति, स्नेह की प्रतिमा और सज्जनता के अवतार थे। जो उनसे एक बार मिला, वह उन्हें फिर कभी नहीं भूला। मुझे वह दिन और वह दृश्य अबतक याद है। सन् १९१५ ई० में, (अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में) उनसे प्रथमवार साक्षात्कार हुआ था। प० मुकुन्दराम का तार पाकर वे ज्वालापुर आये थे। मैं उन दिनों वहीं महाविद्यालय में था। वे स्टेशन से सीधे (प०मुकुन्दराम के साथ) पहले मेरे पास पहुँचे। मैं पढ़ा रहा था। इससे पूर्व कभी देखा न था, आने की सूचना भी न थी। सहसा एक सौम्यमूर्त्ति को विनीत भाव से सामने उपस्थित देखकर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। दुपल्ली टोपी, वृन्दावनी बगलबन्दी, घुटनों तक धोती, गले में अँगोछा। यह वेष भूषा थी। आँखों से स्नेह बरस रहा था। भीतर की स्वच्छता और सदाशयता मुस्कराहट के रूप में चेहरे पर झलक रही थी। उस समय 'किरातार्जुनीय' का पाठ चल रहा था। व्यास पाण्डव समागम का प्रकरण था। व्यासजी के वर्णन में भारवि की ये सूक्तियाँ छात्रों को समझा रहा था—

"प्रसह्य चेत सु समासजन्तमसस्तुतानामपि भावमार्द्रम्"
"माधुर्य विस्रम्भ-विशेष भाजा कृतोपसभापमिवेदितेन"

इन सूक्तियों के मूर्तिमान् अर्थ को अपने सामने देखकर मेरी आँखें खुल गईं। इस प्रसंग को सैकड़ों बार पढ़ा, पढ़ाया था, पर इनका ठीक अर्थ उसी दिन समझ में आया। मैं समझ गया कि हों न हों ये सत्यनारायणजी हैं; पर फिर भी परिचय प्रदान के लिये प० मुकुन्दराम को इशारा कर ही रहा था कि आपने तुरन्त अपना यह मौखिक 'विज़िटिंग कार्ड' हृदयहारी टोन में स्वयं पढ़ सुनाया —

"नवलनागरी,नेह रत, रसिकन ढिंग विसराम।
आयौ हौं तुव दरस कौं, सत्यनरायन नाम॥"

मुझे याद है, उन्होंने 'निरत नागरी' कहा था, (२२५ तथा २२८ पृष्ठ पर, इसी रूप में, यह छपा भी है) 'निरत' 'रत' पुनरुक्ति सी समझकर मैंने कहा—'नवलनागरी' कहिये तो कैसा? फिकरा चुस्त हो जाय। इस्तहाल मज़ाक (समयोचित विनोद) समझकर वे एक अजीब भोलेपन से मुसकराने लगे, बोले—"अच्छा, जैसी आज्ञा।"

यह पहली मुलाकात थी। इस मौके पर शायद दो दिन पं० सत्यनारायणजी ज्वालापुर ठहरे थे। उनके मुख से कविता पाठ सुनने का अवसर भी पहलीबार तभी मिला था।

सत्यनारायणजी से मेरी अन्तिम भेंट दिसम्बर १९१७ में हुई थी, जब वे 'मालतीमाधव' का अनुवाद समाप्त करके हम लोगों को—मुझे और साहित्याचार्य श्री पण्डित शालग्रामजी शास्त्री को—सुनाने के लिये ज्वालापुर पधारे थे। परामर्शानुसार अनुवाद की पुनरालोचना करके छपाने से पहले एक बार फिर दिखाने को वे कह गये थे, पर फिर न मिल सके। उनके जीवनकाल में दो बार मैं धाँधूपुर भी उनसे मिलने गया था। एक बार की यात्रा में श्री प० शालग्रामजी साहित्याचार्य भी साथ थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी दो-तीन बार मैं धाँधूपुर गया हूँ और सत्य-रायण की याद में जी खोलकर रो आया हूँ। अब भी जब उनकी याद आती है, जी भर आता है। एक प्रोग्राम बनाया था कि दो चार ब्रजभाषा प्रेमी मित्र मिलकर छ महीने ब्रज में घूमें, ब्रज की रज में लोटें, गाँवों में रहकर जीवित ब्रजभाषा का अध्ययन करें, ब्रजभाषा के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करें, ब्रजभाषा का एक अच्छा प्रामाणिक कोष तयार करें। ऐसी बहुत सी बातें सोची थीं, जो उनके साथ गयीं और हमारे जी में रह गयीं! अफसोस!

"ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था!"

सत्यनारायण के कविता पाठ का ढंग बड़ा ही मधुर और मनो-हारी था। सहृदय भावुक तो बस सुनकर बे-सुध से हो जाते थे, वे स्वयं भी पढ़ते समय भावावेश की सी मस्ती में झूमने लगते

थे। ब्रजभाषा की कोमल कान्त पदावली और सत्यनारायणजी का कोकिलकण्ठ, "हेम्न परमामोद"—सोने-सुगन्ध का योग और मणिकाञ्चन का संयोग था।

पठ्यमान—गीयमान—विषय का आँखों के सामने चित्र सा खिंच जाता था और वह हृदय पट पर अङ्कित हो जाता था। सुनते सुनते तृप्ति न होती थी। कविता सुनाते समय वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि थकते न थे। सुनाने का जोश और स्वर माधुर्य, उत्तरोत्तर बढता जाता था। उच्चारण की विस्पष्टता, स्वर की स्निग्ध गम्भीरता, गले की लोच में सोज और साज तो था ही, इसके सिवा एक और बात भी थी, जिसे व्यक्त करने के लिये शब्द नहीं मिलता। किसी शायर के शब्दों में यही कह सकते हैं —

"जालिम में थी इक और बात इसके सिवा भी।"

सत्यनारायणजी के श्रुति-मधुर स्वर में सचमुच मुरली-मनोहर के वशीरव के समान एक सम्मोहनी शक्ति थी, जो सुनने वालों पर जादू का सा असर करती थी। सुननेवाला चाहिये, चाहे जब तक सुने जाय, उन्हें सुनाने में उज्र न था। एक दिन हमलोग उनसे निरन्तर ६—७ घंटे कविता सुनते रहे, फिर भी न वे थके, न हमारा जी भरा।

सत्यनारायण स्वाभाविक सादगी के पुतले थे, गुदड़ी में छिपे लाल थे। उनकी भोली भाली सूरत, ग्रामीण वेषभूषा, बोल

चाल में ठेठ ब्रजभाषा, देख-सुनकर अनुमान तक न हो सकता था कि, इस चोले में इतने अलौकिक गुण छिपे हैं! उनकी सादगी सभा-सोसाइटियों में उनके प्रति अशिष्ट व्यवहार का कारण बन जाती थी। इसकी बदौलत उन्हें कभी-कभी धक्के तक खाने पड़ते थे। प्लेटफार्म की सीढ़ियों पर मुश्किल से बैठने पाते थे! इस जीवनी में ऐसे कई प्रसङ्गों का उल्लेख है। इस प्रकार की एक घटना उन्होंने स्वयं सुनायी थी —

मथुराजी में स्वामी रामतीर्थजी महाराज आये हुए थे। खबर पाकर सत्यनारायणजी भी दर्शन करने पहुँचे। स्वामीजी का व्याख्यान होने को था, सभा में श्रोताओं की भीड़ थी, व्याख्यान का नान्दी पाठ-मंगलाचरण-हो रहा था। अर्थात् कुछ भजनीक भजन अलाप रहे थे। सब कवि लोग अपनी अपनी ताजी तुकबन्दियाँ सुना रहे थे। सत्यनारायणजी के जी में भी उमङ्ग उठी, ये भी कुछ सुनाने को उठे। व्याख्यान वेदि की ओर बढ़े, आज्ञा माँगी, पर 'नागरिक' प्रबन्धकर्ताओं ने इस "कोरे सरय, ग्राम के वासी" को रास्ते में ही रोक दिया। दैवयोग से उपस्थित सज्जनों में कोई इन्हें पहचानते थे। उन्होंने कह सुनकर किसी तरह ५ मिनट का समय दिला दिया। श्रीकृष्णभक्ति के दो सवैये इन्होंने अपने खास ढंग में इस प्रकार पढ़े कि सभा में सन्नाटा छा गया, भावुकशिरोमणि श्रीस्वामी रामतीर्थजी सुनकर मस्ती में झूमने लगे। ५ मिनट का नियत समय समाप्त होने पर जब ये बैठने

लगे तब स्वामीजी ने आग्रह और प्रेम से कहा कि अभी नहीं, कुछ और सुनाओ। ये सुनाते गये और स्वामीजी अभी और, अभी और, कहते गये; व्याख्यान सुनाना भूल कर कविता सुनने में मग्न हो गये। ५ मिनिट की जगह पूरे पौन घंटे तक कविता-पाठ जारी रहा। मथुरा की भूमि, ब्रजभाषा में श्रीकृष्णचरित की कविता, भावुक भक्त शिरोमणि स्वामी रामतीर्थ का दरबार, इन्हें और क्या चाहिये था —

"महाग्घोपचयादय समुदित सर्वोगुणानां गण।"

का सुन्दर सुयोग पाकर रसवृष्टि से सबको शराबोर कर दिया—यमुना तट पर 'ब्रजभाषा सुरसरी की हिलोर में सबको डुबो दिया। कहा करते थे, वैसा आनन्द कविता पाठ में फिर नहीं आया।

हिन्दी-साहित्य की निःस्वार्थ सेवा और ब्रजभाषा की कविता का प्रचार, लोकरुचि को उसकी ओर आकृष्ट करना, ब्रज-कोकिल सत्यनारायण के जीवन का मुख्य उद्देश था। उन्होंने भिन्न-भाषा-भाषी अनेक प्रसिद्ध पुरुषों के अभिनन्दन में जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं उनमें प्रशस्तिपात्रों से यही अपील की है —

"जैसी करी कृतारथ तुम अँग्रेजी भाषा।
तिमि हिन्दी-उपकार करहुगे, ऐसी आशा॥"

—(कवीन्द्र रवीन्द्र के अभिनन्दन में)

"नित ध्यान रहे तव हृदय में ईशचरन-अरविन्द को।
प्रिय सजन, मित्र, निज छात्रजन हिन्दी हिन्दू हिन्द को॥"

—(डाब्सन साहब के अभिनन्दन में)

स्वामी रामतीर्थजी के वे इसलिये भी अनन्यभक्त थे कि उन्हें -"व्रज-व्रजभाषा-भक्त भक्ति रस कविर रसायन" समझते थे। (अपने समय के महापुरुषों में सबसे अधिक भक्ति उनकी स्वामी रामतीर्थजी ही में थी। स्वामी जी भी सत्यनारायणजी के गुणों पर मुग्ध थे। उन्हें अपने साथ अमेरिका ले जाने के लिये बहुत आग्रह करते रहे, पर सत्यनारायणजी अपने गुरु की बीमारी के कारण न जासके, और इसका सत्यनारायणजी को सदा पश्चाताप रहा)। अस्तु सत्यनारायण, सभा-सोसाइटियों में भी इसी उद्देश से, कष्ट उठाकर सम्मिलित होते थे, जैसा कि उन्होंने एक बार अपने एक मित्र से कहा था—

"मैं तो व्रजभाषा को पुकार ले कें अब्दर अ ऊ गो" और कछू नायँ तो व्रजभाषासुरसरी की हिलोर में सब को भिजायँ तो आऊ गो।

सत्यनारायण मनसा, वाचा, कर्मणा, हिन्दी के सच्चे उपासक थे, और अपनी वेषभूषा, आचार-व्यवहार और भाव-भाषा से प्राचीन हिन्दुत्व और भारतीयता के पूरे प्रतिनिधि थे। बी०ए० तक अँगरेजी पढकर और अँगरेजी के विद्वानों की संगति में रात दिन रहकर भी वे अँगरेजी से बचते थे। अनावश्यक अँगरेजी बोलने का हमारे नवशिक्षितों को कुछ व्यसन सा होगया है। इनकी हिन्दी

में भी तीन तिहाई अँगरेजी की पुट रहती है। सत्यनारायण इस व्यापक दुर्व्यसन का अपवाद थे।

एक बार जब वे ज्वालापुर में आये हुए थे, हिन्दी भाषा-भाषी एक नवयुवक साधु से मैंने उनका परिचय कराया। मैं भूल से यह भी कह गया कि सत्यनारायणजी अँगरेजी के भी विद्वान् हैं। फिर क्या था, यह सुनते ही साधु साहब प्लुतस्वर में हाँ ३ कहकर लगे अँगरेजी उगलने। यद्यपि वार्तालाप का विषय हिन्दी भाषा का प्रचार था। 'साधु महात्मा' बराबर अंगरेजी बूकते रहे और सत्यनारायणजी अपनी सीधी-सादी हिन्दी में उत्तर देते रहे। कोई एक घन्टे तक यह अँगरेजी-हिन्दी-संग्राम चलता रहा, पर सत्यनारायणजी ने एक वाक्य भी अँगरेजी का बोलकर न दिया वे अपने व्रत से न डिगे। अन्त में हारकर साधु साहब ने पूछा—'क्या अँगरेजी बोलने की आपने कसम तो नहीं खा रक्खी?', इन्होंने गम्भीरता से कहा —'मैं किसी भी ऐसे मनुष्य के साथ, जो टूटी-फूटी भी हिन्दी बोल समझ सकता है, अँगरेजी नहीं बोलता। हिन्दी बोलने समझने में सर्वथा ही असमर्थ किसी अँगरेजी-दाँ से वास्ता पड जाय तो लाचारी है, तब अंग्रेजी भी बोल लेता हूँ।" उक्त साधु अँगरेजी के कोई बडे विद्वान् न थे, इन्ट्रेंस तक पढे थे। कुछ दिनों मद्रास की हवा खा आये थे और उन्हें अँगरेजी बोलने का सक्रामक रोग लग गया था।

सत्यनारायणजी ने समय अनुकूल न पाया। कविता के लिये यह समय वैसे ही प्रतिकूल है, फिर व्रजभाषा की कविता

से तो लोगों को कुछ राम नाम का वैर हो गया है। ब्रजभाषा की कविता का उत्कर्ष तो क्या, उसकी सत्ता भी आजकल के साहित्य-धुरन्धरों को सह्य नहीं। सत्यनारायणजी के रोम रोम और श्वास श्वास में ब्रजभाषा और ब्रजभूमि का अनन्य प्रेम भरा था। यह पूर्व जन्म की प्रकृति थी—

(सतीव योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि)

जन्मान्तरीण संस्कार थे, जो उन्हें बरबस इधर खींच रहे थे!

"मोइ तो ब्रज में ही छोडि के अन्त कहूँ अच्छौ नाय लगै गौ! मैं तो ब्रज में ही आऊँ गौ—मेरी ब्रज की ही वासना है।"

(पृष्ठ २४८)

उनके इन उद्गारों से दृढ धारणा होती है कि अष्टछापवाले किसी महाकवि महात्मा की आत्मा सत्यनारायण के रूप में उतरी थी। अन्यथा इस काल में यह सब कुछ कब सम्भव था! यह तो दलबन्दी का जमाना है, विज्ञापनबाजी का युग है, सब प्रकार की सफलता 'प्रोपगंडा' पर निर्भर है, जिसे इन साधनों का सहारा मिला, वह गुब्बारा बनकर ख्याति के आकाश में चमक गया। गरीब सत्यनारायण को कोई भी ऐसा साधन उपलब्ध न था। यही नहीं, भाग्य से उन्हें कुछ मित्र भी ऐसे मिले जिन्होंने उनके बेहद भोलेपन को अपने मनोविनोद की सामग्री या तफरीह तबा का सामान समझा, जिन्होंने दाद देने या उत्साह बढ़ाने की जगह उनकी तथा ब्रजभाषा के अन्य कवियों की कविताओं की हास्योत्पादक समालोचना करना ही सन्मित्र का कर्तव्य समझा

था, और हाय उनकी उस जन्म भर की कमाई 'हृदय-तरङ्ग' को, जिसे याद कर करके वे सदा दु ख के सांस लेते रहे, दरिद्र के मनोरथ की गति को पहुँचानेवाले भी तो उनके सुहृच्छिरोमणि कोई सज्जन ही थे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में पलकर और ऐसी कद्रदान सोसाइटी पाकर भी आश्चर्य है, सत्यनारायण "कवि-रत्न" कैसे कहला गये। इसे स्वामी रामतीर्थ जैसे सिद्ध महात्मा का आशीर्वाद या अदृष्ट की महिमा ही समझना चाहिए।

सत्यनारायण के सद्गुणों का पूर्ण परिचय अभी ससार को प्राप्त नहीं हुआ था, नन्दन कानन का यह पारिजात अभी खिलने भी न पाया था कि ससार की विषैली वायु के झोकों ने झुलस दिया! व्रजकोकिल ने पञ्चम में आलाप भरना प्रारम्भ ही किया था कि निर्दय काल व्याध ने गला दबा दिया! भारतीय आत्मा कृष्ण को पुकारती ही रह गयी और कोकिल उडगया! "वह कोकिल उड़ गया, गया, वह गया, कृष्ण दौडो, आओ!"

ससार में समय समय पर और भी ऐसी दुर्घटनाए हुई हैं, पर सत्यनारायण का इस प्रकार आकस्मिक वियोग भारत भारती हिन्दी-भाषा का परम दुर्भाग्य ही कहा जायगा।

इस जीवनी में सत्यनारायण के सार्वजनिक जीवन पर, उनकी साहित्य-सेवा और व्यक्तित्व पर, अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया है, और खूब किया है, कोई बात बाकी नहीं छोडी। मैं भी प्यारे सत्यनारायण की याद में चार आंसुओं

की जलाञ्जलि दे रहा हूँ। मेरी इच्छा थी कि उनकी कविता पर (और यही उनका वास्तविक जीवन था) जरा और विस्तृत रूप से विचार करूँ। पर सोचने पर अपने में इस काम की पात्रता न पायी, क्योंकि मैं ब्रजभाषा की कविता का पक्षपाती प्रसिद्ध हूँ, और सत्यनारायण मेरे मित्र थे। सत्यनारायण की कविता की समालोचना का यथार्थ अधिकारी कोई तटस्थ विद्वान् ही हो सकता है, जो इस समय तो नहीं पर कभी आगे चलकर सम्भव है—

"कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

दुर्भाग्य की बात है कि सत्यनारायणजी की उत्कृष्ट कविता का अधिकांश 'यार लोगों की इनायत' से नष्ट होगया। जिसके लिये वे अन्त समय तक तड़पते रहे। फिर भी उनकी बची-खुची जो कविता इस समय उपलब्ध है, वह उन्हें कमसे कम कविरत्न प्रमाणित करने के लिये, मैं समझता हूं, पर्याप्त है। भले ही कुछ समालोचक उन्हें 'महाकवि' मानने को तयार न हों, अपनी अपनी समझ ही तो है। सत्यनारायण के सम्बन्ध में यह विवाद उठ चुका है। ब्रजभाषा के प्रवीण पारखी श्रीवियोगी हरिजी ने "ब्रजमाधुरीसार" में लिखा है—

"इसमें सन्देह नहीं कि सत्यनारायणजी ब्रजभाषा के एक महाकवि थे"

इस पर एक विद्वान् समालोचक ने यह कह आपत्ति की—"सत्यनारायण को महाकवि कहना उनकी स्तुति भले ही हो, पर उसका औचित्य भी मानने के लिये कमसे कम हम तो तय्यार नहीं हैं"।

इस पर वियोगी हरिजी ने "नम्र निवेदन" किया—

"जो कवि एक आलोचक की दृष्टि में महाकवि है वही दूसरे की नजर में साधारण कवि भी नही है। स्वर्गीय सत्यनारायण को अभी चाहे कोई महाकवि न माने, पर कुछ काल के बाद वे, निःसंदेह महाकवियों की श्रेणी में स्थान पायेंगे। यह अनुमान मुझे महाकवि भवभूति वर्डसवर्थ और देव का स्मरण करके हुआ है।"—

—"सम्मेलन पत्रिका", भा० ११, अ० १०।

भगवान् करे ऐसा ही हो। अब न सही, आगे चलकर ही सत्यनारायण को समझनेवाले पैदा हों और श्रीवियोगी-हरिजी की इस सूक्ति का अनुमोदन करें—

'जाठ्योहारन, भोरो कोरो गाम निवासी।
ब्रज साहित्य प्रवीन काव्य-गुन सिन्धु विलासी।
रचना रुचिर बनाय सहज ही चित आकरषै।
कृष्ण भक्ति अरु देस-भक्ति आनँद रस बरषै।
पढ़ि 'हृदय-तरंग' उमग उर प्रेम-रंग दिन दिन चढ़े।
सुचि सरल सनेही सुकवि श्रीसतनारायन जसु बढ़े!"

— कविकीर्तन

सत्यनारायण की जीवनी करुण-रसका एक दुःखान्त महानाटक है। जिस प्रतिकूल परिस्थिति में उन्हें जीवन बिताना पड़ा और फिर जिस प्रकार उन्हें "अनचाहत को संग" के हाथों तंग आकर समय से पहले ही संसार से कूच करने के लिये विवश होना पड़ा, उसका हाल पढ़-सुनकर किसी भी सहृदय को उनकी

दयनीय भाग्यहीनता पर दु ख और समवेदना हो सकती है। पर एक बात में, सैकड़ों से वे बड़े ही सौभाग्यशाली सिद्ध हुए। गहन अन्धकार में भटकते को दीपक दीख गया, अपार सागर में थके हुए पक्षी को मस्तूल मिल गया, सत्यनारायण को मरने के बाद ही सही, चुपकी दाद देने वाला, एक 'भारतीय हृदय', मुर्दा हड्डियों में जान डालनेवाला-'यश शरीर पर दया दिखानेवाला—एक 'मसीहा' मिल गया। जिसके कारण सत्यनारायण की स्वर्गीय, सतप्त आत्मा अपने स सारिक जीवन की समस्त दु खदायी दुर्घटनाओं को भूलकर सन्तोष की साँस ले सकती है, और अन्यान्य परलोकवासी हिन्दी के वे अभागे कवि, लेखक जिनका नाम भी यह कृतघ्न और स्वार्थी ससार भूल गया, सत्यनारायण की इस खुशनसीबी पर रश्क कर सकते हैं, इस सौभाग्य शीलिता को स्पृहा की दृष्टि से देख सकते हैं। यही नहीं, हिन्दी के अनेक जीवित लेखक और कवि भी, यदि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि मुर्दों को जिंदा करनेवाला कोई ऐसा 'मसीहा' हमें भी मिल जायगा, तो सुखपूर्वक इस ससार से सदा के लिये विदा होने को, उस लेडी की तरह तयार हो जायँ, जिसने आगरे के "ताज" को देखकर अपने पति द्वारा यह पूछा जाने पर कि कहो इस अद्भुत इमारत के विषय में तुम्हारी क्या राय है ? उत्तर दिया था कि "मैं इसके सिवा कुछ नहीं कह सकती कि यदि आप मेरी कबर पर ऐसा स्मारक बनावें तो मैं आज ही मरने को तयार हूँ।" मेरा मतलब इस जीवनी के लेखक 'भारतीय हृदय' पडित

बनारसीदासजी, चतुर्वेदी से है। चतुर्वेदीजी की पर-दुःख कातरता और दीनबन्धुता प्रसिद्ध है, प्रवासी भारतवासियों की राम कहानी सुनाने में जो काम आपने किया है वह बड़े-बड़े दिग्गज लीडरों से भी न बन पड़ा।

अब उससे भी महत्त्व पूर्ण कार्य में आपने हाथ लगाया है। अर्थात् साहित्य-सेवियों की (जिनकी रामकहानी प्रवासी भारतवासियों से कुछ कम करुणाजनक नहीं है) जीवनी लिखने का पुण्य कार्य प्रारम्भ कर दिया है, जिसका श्रीगणेश सत्य-नारायण की इस जीवनी से हुआ है। इसके सम्पादन में जितना परिश्रम चतुर्वेदीजी ने किया है, वह उन्हीं का काम था और इसकी जितनी दाद दी जाय, कम है। हिन्दी-ससार में अपने ढंग का यह बिलकुल नया अनुष्ठान है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दी के किसी भी कवि या लेखक की जीवनी का मसाला, उसकी मृत्यु के बाद, इस परिश्रम, लगन और खोज के साथ इकट्ठा नहीं किया गया। जाननेवाले जानते हैं कि सत्य-नारायण की जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली एक-एक चिट्ठी के के लिये जीवनी लेखक को कितना भगीरथ प्रयत्न करना पड़ा है, यदि इन सब बातों का उल्लेख किया जाय तो एक खासा जासूसी उपन्यास तयार हो जाय। जो चाहे सत्यनारायणजी की जीवनी के उस मसाले को हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कार्या-लय में जाकर देख सकता है।

सच तो यह है कि सत्यनारायणजी की यह जीवनी पं० बनारसीदासजी ही लिख सकते थे। यों कहने को सत्यनारायण जी के अनेक अन्तरङ्ग और गाढ़े मित्र थे और हैं, पर मित्रता का नाता चतुर्वेदीजी ने ही निबाहा है। मानो मरते वक्त सत्यनारायण की आत्मा इनके कान में कह गयी थी —

"यों तो मुँह देखे की होती है मुहब्बत सबको।
मैं तो तब जानूँ मेरे बाद मेरा ध्यान रहे॥"

जीवनी लिखने का उपक्रम करके चतुर्वेदीजी प्रवासी-भारत वासियों के पुराने राजरोग में फँसकर जीवनी के कार्य को स्थगित कर बैठे थे, इस पर मैंने तकाजे के दो तीन पत्र लिखकर उन्हें जीवनी की याद दिलाई, शीघ्र पूरा करने की प्रेरणा की, और पूछा कि क्या इस पचड़े में पड़ कर सत्यनारायण को भी भूल गये? इसके उत्तर में जो पत्र उन्होंने लिखा, उसके एक एक शब्द से निःस्वार्थ प्रेम, गहरी सहृदयता और सच्ची सहानुभूति टपकती है। मैं उस पत्र का कुछ अंश इस अभिप्राय से यहां उद्धृत करना चाहता हूँ कि मित्रता का दम भरनेवाले और बात बात पर सहृदयता की डींग मारनेवाले हम लोग उसे पढ़े, सोचें और हो सके तो कुछ शिक्षा भी ग्रहण करें। (चतुर्वेदीजी इस "दोस्त फरोशी" के लिये मुझे क्षमा करें)। 'भारतीय हृदय' ने लिखा था —

"......सत्यनारायण के अन्य मित्र उन्हें भले ही भूल जायँ, पर मैं कभी नहीं भूल सकता। जितना लाभ उनकी जीवनी से मुझे हुआ है, उतना

देखनी हो तो जीवनी का अन्तिम अध्याय "मेरी तीर्थयात्र
ध्यान से पढ जाइये । जबतक किसी चरित्र लेखक को चरि
नायक के साथ इतनी गहरी हार्दिक सहानुभूति न हो—उस
ऐसी अशिथिल श्रद्धा न हो,—तबतक इस प्रकार का चरि
लिखा ही नहीं जा सकता। उक्त अवतरणों के उद्धरण से य
यही दिखाना इष्ट है।

परमात्मा दया करके 'भारतीय हृदय' का सा विशाल
सहानुभूति-पूर्ण और प्रेमी हृदय हम सबको भी प्रदान क
जिससे हम लोग अपने साहित्य-सेवियों का सम्मान कर
सीखे और अपने सन्मित्रों की स्मृति और कीर्तिरक्षा के लि
इनके समान प्रयत्नशील हो सकें।

चतुर्वेदीजी ने सत्यनारायण के अनेक मित्रों को कीर्तिशे
स्वर्गीय मित्र के गुणगान द्वारा वाणी और हृदय पवित्र करने
अवसर देकर उन पर एक बडा उपकार किया है। मैं चतुर्वेदी
का कृतज्ञ हूँ कि मुझे भी उन्होंने इस बहाने सत्यनारायण
याद में 'चार आँसू' बहाने का मौक़ा देकर अनुगृहीत किया।

मैं प्रत्येक सहृदय साहित्यप्रेमी से इस जीवनी की रा
कहानी पढने की सानुरोध प्रार्थना करूँगा।

काव्यकुटीर, नायक नगला,
पो० चाँदपुर, (बिजनौर)
कार्तिक सुदि ७, स० १९८३ वि०

पद्मसिंह शर्म्मा

भारत-भक्त सी० एफ़० एण्ड्रूज़
की सेवा में

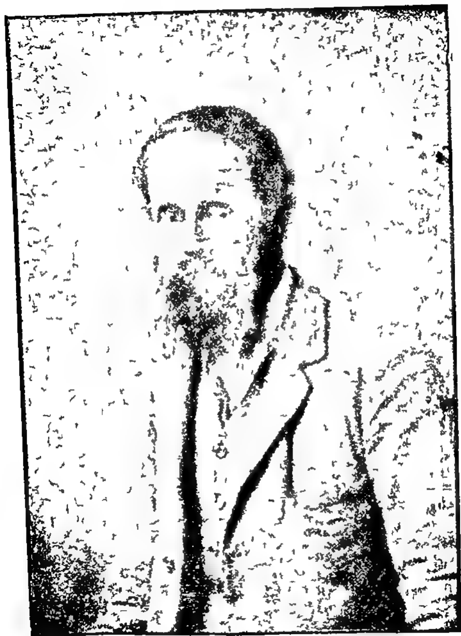
उनकी ५१ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

सप्रेम और सादर

समर्पित

शान्ति निकेतन,
बोलपुर
सन् १६२१

बनारसीदास चतुर्वेदी



भारत-भक्त सी० एफ० एण्ड्रूज

कृष्ण प्रेस, प्रयाग।

चार शब्द

आज आठ वर्ष बाद सत्यनारायण हिन्दी-जनता तथा अपने मित्रों के सम्मुख फिर उपस्थित हैं। वही जीवनचरित सफलता-पूर्वक लिखा हुआ कहा जा सकता है जो चरितनायक को ज्यों का त्यों—उसकी सजीव मूर्ति—पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दे। इस कसौटी पर यह पुस्तक ठीक उतरती है या नहीं, इसका निर्णय विज्ञ समालोचक ही कर सकते हैं। मैं अपनी ओर से केवल इतना ही कहूँगा कि जो कार्य मैंने अपने ऊपर लिया था वह आसान नहीं था। सत्यनारायणजी को स्वप्न में भी इस बात की आशंका नहीं हुई थी कि उनकी मृत्यु के पीछे उनका चरित लिखा जावेगा; और न उन्होंने अपने विषय की कोई वस्तु ही संग्रह की थी। इस कारण मेरी कठिनाई और भी बढ़ गई। उनकी चिट्ठियों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली छोटी-छोटी बातों के लिये मुझे घटों परिश्रम करना पड़ा, बीसियों पत्र लिखने पड़े और महीनों खुशामद करनी पड़ी। आज यह बात मैं नम्रता तथा अभिमानपूर्वक कह सकता हूँ कि जितना अच्छा संग्रह सत्यनारायण के जीवन के विषय में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय में सुरक्षित है उतना अच्छा संग्रह शायद ही किसी हिन्दी लेखक के विषय में सुरक्षित होगा। जीवनचरित जैसा कुछ है, आपके सामने है।



स्वर्गीय प० सत्यनारायणजी कविरत्न

ह मानियो। जब रेल चलन लगै तब चढियो और जौनो खडी न होन पावै, उतर परियो।" पंडितजी ने हसकर कहा—"भैया तुम्हारी कही जरूर मानिहैं।

गाडी चल दी और पंडितजी आँखों से ओझल हो गये। तबसे उनकी तालाश में हूँ। उनका पता नहीं चला। सम्मेलन के अधिवेशनों मे उनका पता नहीं लगा, समाचार पत्रों के आफिस में वे नहीं पाये गये और लेखक मंडल में उनकी मूर्ति नहीं दीख पडी। वह स्वाभाविक सरलता, वह निःस्वार्थ साहित्य-प्रेम वह मधुर हास्य और वह कोकिल स्वर हिन्दी-जगत् में कहीं एकत्र नहीं मिले। कहीं आदर्शवादिता के आडम्बर में व्यापारिकता दीख पडी, कहीं देशभक्ति व स्वार्थ का विचित्र संगम देखा, कहीं क्रियात्मक कल्पना शक्ति का बिलकुल अभाव पाया, और कहीं अधिकार-लोलुपता के दर्शन हुए, पर सत्यनारायण जी कहीं नहीं दृष्टिगोचर हुए। अब भी उनकी तलाश में हूँ यदि मैं नहीं तो कोई दूसरा ही उनका पता लगावेगा; क्योंकि—

कालोह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

फीरोजाबाद, जिला आगरा
१२।१२।२६ } बनारसीदास चतुर्वेदी



"तुमने सत्यनारायण को व्यर्थ ही इतना बढ़ा दिया है। वे इतने बड़े तो थे नहीं जितना तुमने उन्हें दिखलाया है।" यह बात उन महानुभावों के मुँह से, जो सत्यनारायण के मित्र होने का दावा करते हैं, सुनकर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। सत्यनारायण इतनी उच्च कोटि के मनुष्य थे कि उन्हें बढ़ाना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर था। वस्तुत बात उल्टी ही हुई है। सत्यनारायण के इस सम्बन्ध से मुझे आवश्यकता से अधिक विज्ञापन मिल गया है।

* * * *

सत्यनारायण की कविता कैसी होती थी और वे 'कविरत्न' थे या नहीं, इसका निर्णय मेरी बुद्धि के परे है। 'कविरत्न' शब्द का प्रयोग भी मैंने केवल इसी कारण से किया है कि यह शब्द बार-बार प्रयुक्त होने पर उनके नाम का एक आवश्यक भाग ही बन गया था। वैसे स्वयं सत्यनारायणजी इस प्रकार की उपाधि को व्याधि ही समझते थे। सत्यनारायण जितने अच्छे कवि थे उसके लिये नहीं, बल्कि जितने अच्छे कवि आगे चलकर होते उसके लिये वे कविता-मर्मज्ञों की श्रद्धा के पात्र हैं।

* * * *

उनके अन्तिम-दर्शन की बात अभी तक नहीं भूला। इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से लौटकर वे घर आ रहे थे। स्टेशन से जब गाड़ी चलने लगी, मैंने कहा—"पंडितजी, एक बात हमारी

जन्म और बाल्यावस्था

—— o ——



अलीगढ़ जिले की तहसील सिकन्दराराऊ में जरैरा नामक एक ग्राम है। वहाँ एक निर्धन सनाढ्य ब्राह्मण खुशालीराम रहा करते थे। खुशालीराम के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। इनकी पाँचवीं सन्तान का नाम तलफो था। तलफो को खुशाली राम ने भली भाँति पढ़ाया लिखाया था। वह रामायण अच्छी तरह पढ़ और समझ सकती थी। उसकी चौपाई पढ़ने की शैली बड़ी आकर्षक थी। तलफो का विवाह कोयल (अलीगढ़) के श्रीयुत   दुबे के साथ कर दिया गया। दुबेजी का घर बड़ा धन-धान्य-सम्पन्न था और खुशालीरामजी ने कुछ धन लेकर अपनी लड़की का विवाह दुबेजी के साथ कर दिया था। दुबेजी की अवस्था प्रौढ़ थी। उनकी यह दूसरी शादी थी। तलफो की उम्र १४ या १५ वर्ष की थी। निर्धन माता पिता की सन्तान तलफो एक धनाढ्य वंश की वधू हुई और उसका नाम रानी सर्दारकुँवरि रख दिया गया। दुर्भाग्यवश दुबेजी थोड़े दिनों बाद ही स्वर्ग-

वासी हुए। सर्दारकुँवरि और उनकी सास मे, जायदाद के व
में, मुकद्दमेवाजी हुई, जिसमें सर्दारकुँवरि की हार हुई। इ
हार की वजह से उन्हें बडी-बडी कठिनाइयों का सामना कर
पड़ा। दीन-हीन अवस्था में उन्हें घर से निकल जाना पड़ा
निकलकर वे सराय नामक ग्राम में रहीं और वहीं उनके एक पु
उत्पन्न हुआ। वे पढ़ी-लिखी थीं, इसलिये उन्होंने जारर
कोटला इत्यादि स्थानों में पढाने का काम किया। फीरोजाब
म भा वे कुछ दिन रहीं थीं। तदनन्तर वे ताजगज के निकट
ग्रामों में लडकियों को पढाया करती थीं।

एक वार जँगरा ग्राम के एक वृद्धपुरुष, जिन्होंने यह स
वृत्तान्त वतलाया है, कार्य्यवश आगरे गये हुए थे। वहाँ, ताजग
के निकट, उनके एक नोकर ने तलफो को देखा। यह सुन
वे वृद्धपुरुष भी उसे देखने के लिये गये और वृद्ध महन्त बा
रघुवरदास के यहाँ तलफो को देखा। वहाँ एक छोटा
सुन्दर वालक खेल रहा था। वृद्धपुरुष ने कहा—"यह कौ
है ?" तलफो ने उत्तर दिया—"यह मेरा लडका है और इस
नाम है सत्यनरायन"। यही सत्यनरायन हमारे चरित
नायक हैं।

सत्यनारायण का जन्म माघ शुक्ल १३ सोमवार सव
१९३६ को, रात के दो वजे के लगभग, सराय नामक ग्राम
हुआ था। उस दिन सन् १८८० ई० की २४ फरवरी थी। दी
हीन निस्सहाय इधर-उधर भटकनेवाली माता की करुणाजन

स्थिति का प्रभाव पुत्र पर पड़े बिना नहीं रह सकता। इसीलिये सत्यनारायण के जीवन के जिस भाग पर हम दृष्टि डालते हैं वहीं हम करुणाजनक दीख पड़ता है।

सत्यनारायणजी का जन्म माता की करुणोत्पादक स्थिति में हुआ था। उनकी बाल्यावस्था उसी अवस्था में कटी। बड़े होने पर कई वर्षतक श्वास से पीड़ित होने के कारण उनकी दशा करुणोत्पादक बन गई थी। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उनकी रुचि करुणारस की ओर प्रवृत्त हो गई थी। करुणा-रस प्रधान उत्तर रामचरित का अनुवाद उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक किया था। उनका अशान्तिमय गृह जीवन करुणोत्पादक था और अन्त में उनकी मृत्यु में तो करुणारस की पराकाष्ठा ही हो गई। अस्तु, इन बातों को पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे ही, इस समय हमें यहाँ पर जाटों के छोटे-छोटे बालकों के साथ खेलनेवाले सत्यनारायण का वृत्तान्त लिखना है। सत्यनारायण के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि उन्हें बाबा रघुवरदासजी का आश्रय मिल गया। महन्त होने पर भी बाबा रघुवरदास को लिखने-पढ़ने का बड़ा शौक था। उन्होंने सैकड़ों हस्तलिखित पुस्तकें संग्रह की थीं। दुर्भाग्यवश ये बहुमूल्य पुस्तकें अब मन्दिर की धूल में पड़ी हुई वर्षा, शीत, आतप और दीमक का आनन्द अनुभव कर रही हैं। खैर, बाबा रघुवरदासजी हिन्दी-कविता के बड़े प्रेमी थे और उन्होंने प्राचीन हिन्दी काव्यग्रन्थों की कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ अपने यहाँ संग्रह भी की थीं। जिस मन्दिर में बाबा रघुवरदासजी रहा करते थे उससे कुछ भूमि लगी हुई

थी। बाबाजी को अपनी निजी जायदाद से ३०० रु० वार्षिक की आय हो जाती थी। ९।

सत्यनारायण इन्हीं बाबाजी के यहाँ मन्दिर में रहा करते थे और धाधूपुर की धूल में, जाटों के लड़कों के साथ, खेला करते थे। कहा जाता है कि वे बाल्यावस्था में कुरूप स्त्रियों की गोद में नहीं जाते थे। गाँव में जो होली या रंगति हुआ करती थीं उनको सत्यनारायण बड़े ध्यानपूर्वक सुनते थे और उसी ध्वनि से गाया करते थे। उन्हीं दिनों की एक रंगति सत्यनारायण को याद थी और वे उसे कभी कभी ठीक गँवारू धुन में गाया करते थे। पाठकों के मनोरंजनार्थ उसे हम यहाँ लिखे देते हैं।

रंगति

मोहिनी-चरित्र

एक तिना की बात।
कामिनि ने लीला करी, सो, सुनियो जुरि मिलि भ्रात ।।
शची शारदा रमा भवानी ताकी समता ना करैं।
पैदा भई राजदुलारी।
सो कैसे परगट भई कामिनी।
जाके माता पितु नहीं नहीं भ्रात और कन्थ।
कामिन काम नदामिनी जाकूँ गावें ग्रन्थ ।।
जन्म जब कामिन ने लीन्यो, मातु को ढिग नाएँ चीन्यो।
पिता तिरलोकी म नाएं भइ माँ पैदा कन्याए ।।

लिया नारि अँनार कि जाने कँते कढि आईं ॥
ब दा दिपि रह्यो लिलार लाल भई जोती ।
और सिर सोने की धार लागि रहे मोती ॥
सिर मोतिफूल सिन्दूर बाँधि लई चोटी ।
चितवन ते मारे लेइ दृष्टि बल खोटी ॥
नाक नथ तोना की भारी ।
टुलरी तिलरी की गरे म
सुन्दर अँगनारी ॥

नैन काइल क ते प्यारे, नैन ये बान खेंचि मारे ।
रुठ यमयोद्द तन म ते ।
छाड छोड़ि के ध्यान मुनीसुर भाजत बन में ते ॥
हार हमन लटकि हियरा पे अँगिया जरद किनारी ।
पैदा भई राजदुलारी ॥
तहँ मक पुरुष चलि आयो, जे निगिर बाप के जायो ।
पाहुद म त कढि आयो ॥
ता नर की महिमा कहूँ सुनो चित लाई ।
धर लायो वैसा भए नारि जनु पाई ॥
सा सुन्दर रूप नारि नारि को नर ने देह निसारी ।
पैदा भई राजदुलारी ॥

इस रगनि में मोहिनी का स्वरूप जाटिनियों के रूप के अनुसार किया गया है। 'नाक नथ तोना की भारी' और 'गरे में सुन्दर अँगनारी' पहननेवाली जाटिनियों को देखकर मोहिनी के स्वरूप का भी रगनि-रचयिता ने वैसा ही वर्णन कर दिया है।

कभी कभी सत्यनारायण एक 'देवी-स्तुति' भी गाया करते थे जिसका प्रारम्भ इस प्रकार था :—

> सुमिरूँ आदि सुमिरनी माता रह हृदय में आ मेरे ।
> अरु पर्वत में भयो फटेमा । कलम धरू ग्रंथमा ॥

सत्यनारायण बिलकुल ग्रामीण लडकों की तरह ही रहा करते थे, खेत में, खलिहान में, हर जगह उन्हीं के साथ खेला करते थे। सत्यनारायण की ग्रामीणता जीवन भर बनी रही, और सच बात तो यह है कि सत्यनारायण के चरित्र में यदि कोई सब से अधिक मधुर और आकर्षक बात थी तो वह उनकी निष्कपट और अकृत्रिम ग्रामीणता ही थी।



विद्यार्थी-जीवन

[सन् १८९०—१९१० ई०]



सत्यनारायण के विद्यार्थी जीवन को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो हिन्दी-अध्ययन सन् १८९० से १८९६ तक और दूसरा अँगरेजी-अध्ययन सन १८९७ से १९१० तक। यद्यपि सन १८९० के पहले सत्यनारायण ने लुहारगली आगरे में, वैद्यवर पं० रामदत्त के साथ, सारस्वत पढ़ना प्रारम्भ किया था, जब कि वे अपनी माता के साथ रामदत्तजी के पिता देवदत्तजी के यहाँ रहे थे, तथापि नियमानुसार पढ़ाई धाँधूपुर पहुँचने पर ही प्रारम्भ हुई। धाँधूपुर आगरे से लगभग तीन मील और ताजगंज से २ फर्लाङ्ग की दूरी पर है। गाँव की आबादी लगभग हजार-बारह सो होगी। यह जाट लोगों की बस्ती है। करास, आम, नीम और पीपल के वृक्ष यहाँ बहुत से हैं। इसी ग्राम के एक कोने पर खेतों से मिला हुआ बाबा रघुवरदासजी का मन्दिर है। मन्दिर में भगवान रामचन्द्रजी और हनुमानजी की मूर्तियाँ हैं और बाबा अयोध्यादास तथा बाबा रघुवरदासजी के चरण हैं। मन्दिर की छत पर से पश्चिम की ओर ताजबीबी का रौजा दीख पड़ता है और यमुना नदी की धार भी बिल्कुल स्पष्ट दीखती है। मन्दिर से मिला हुआ एक कुवा तथा इमली का वृक्ष है और सामने बहुत से नीम के वृक्ष खड़े हैं। वर्षाऋतु में जब चारों

और हरियाली छाजाती है, धाँधूपुर बहुत सुन्दर लगता है। धाँधूपुर आगरे से निकट भी है और दूर भी। इसलिये वहाँ के निवासी शहर के हानिकारक प्रभावों से बचते हुए भी वहाँ के लाभों का उपयोग कर सकते हैं।

वास्तव में सत्यनारायण की शिक्षा का आरम्भ इसी गाँव से समझना चाहिए। पहले वे ताजगज के मदर्से में पढ़ने के लिए बिठलाये गये थे। अछनेरे के पं० नारायणप्रसादजी सारस्वत, जो उन दिनों ताजगज के स्कूल में अध्यापक थे, लिखते हैं —

"मैं पहली मार्च सन १८९३ ई० को स्कूल ताजगज में पहुँचा। उस समय पं० सत्यनारायणजी स्कूल में नहीं थे। इतना स्मरण है कि वे दर्जा २ या ३ में भर्ती हुए थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनकी माता और बाबा रघुवरदासजी के द्वारा हुई थी। जहाँ तक मुझे याद है, वे पट्टी-बुदिका लेकर नहीं आये थे—कागज पर ही लिखते थे। स्वभाव सरल तथा कुछ गम्भीरतायुक्त था। सदा प्रसन्न रहा करते थे। प्राय बहुत चपल न थे, लेकिन गोबर गणेश भी न थे। कभी किसी बालक से पिटकर भी शिकायत नहीं करते थे। एक दिन मैंने देखा कि एक लडका इन्हे मार रहा है। मैंने मारनेवाले लडके को बुला कर दण्ड देना चाहा, यह देखकर सत्यनारायण मेरे पास आये और उसे क्षमा कर देने के लिये मेरे पैरों पर गिर पडे। इनकी माताजी प्राय प्रतिदिन स्कूल में मिठाई लेकर आती थीं। ये

सुनाते थे। इन्हें कहानी किस्से बहुत पसन्द थे और बहुत सी छोटी-छोटी कहानियाँ याद भी थीं। स्कूल में आने के पहले ही इन्हें १०० श्लोक कण्ठाग्र थे। उन दिनों मेरे पास "हिन्दी बङ्गवासी" और "सुधा सागर" ये समाचार पत्र आते थे। एक दिन मैंने अपना बस्ता खोला और उसमें से एक पुराना बङ्गवासी का अंक, जिसमें टेसू का एक विचित्र गीत था, निकालकर सत्यनारायण को पढ़ने के लिए दिया। उस समय दोपहर की छुट्टी थी। कुछ देर के बाद सत्यनारायण ने यह गीत पढ़कर मुझे सुनाया और मुझ से नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि थोड़ी देर के लिए यह अङ्क मुझे दे दीजिए, मैं इसकी नकल करना चाहता हूँ। मैंने प्रसन्नतापूर्वक वह अङ्क दे दिया। सत्यनारायण ने तीसरे दिन ही वह गीत याद करके मुझे सुना दिया।

श्रीमान प० अम्बिकादत्तजी व्यास द्वारा सम्पादित "पीयूष-प्रवाह" पत्र की दो फाइलें भी मेरे पास थीं। उनमें 'हरि क्यों न मरें उल्लू चुल्लू भरि पानी में' की बहुत सी पूर्तियाँ थीं। एक दिन मैंने ये फाइलें भी सत्यनारायण को दिखलाईं। उस दिन से वे प्राय प्रतिदिन कुछ समय के लिए उन्हें देखते रहे और कितनी ही पूर्तियाँ कण्ठाग्र करके सुनाते रहे। इससे मुझे ज्ञात हो गया कि उनकी रुचि कविता की ओर है। मैं स्वयं भी जो कविता सम्बन्धी पूर्तियाँ करता था उन्हें सत्यनारायण को अवश्य दिखलाता था। सत्यनारायण उन्हें कई-कई बार पढ़ते थे। एक बार मैंने "चातुरै न चाहिए कि पातुरा

सों अटकै"—इस समस्या की निम्नलिखित पूर्ति "सुधा-सागर" नामक समाचार-पत्र के लिए की थी —

दामन ही हेत नित प्रीति ये बढावति है,
　　　　दामन ही हेत गँड बार-बार मटकै।
तीय ने छुडावति सनेह गेह नासति है,
　　　　गुरु जन लाज काज यावे सब सटकै।
याके फन्द फँसे सुख भौन न सुहावत है
　　　　मौन धरि बैठो तऊ हिये माझ खटकै।
कायर कपूत कर कुटिल कुचालों करै,
　　　　चातुरै न चाहिए कि पातुर सों अटकै॥

यह पूर्ति मैंने सत्यनारायण को दिखलाई। उन्होंने इसे पढकर धरि के स्थान पर धारि मेरी सम्मति लेकर बना दिया। उसी दिन से मुझे सत्यनारायण पर विशेष प्रीति उत्पन्न होगई। उस समय ये प्रधान अध्यापक के पास थे, परन्तु मैं उनकी आज्ञा लेकर इन्हें स्वय पढाने लगा। वार्षिक परीक्षा निकट थी, इसलिये रात को भी मैं प्रधान अध्यापक महाशय के तीसरे और चौथे दर्जों को पढाता था। उन दिनों सत्यनारायण सध्या समय कभी कभी मेरे साथ रौजे मे टहलने चले जाते थे। रौजे के विषय में बहुत से प्रश्न किया करते थे। यथा —

इतने ऊंचे मीनार बनाने के लिये इतनी लम्बी लकडी सीढी बनाने को कहाँ से आई होगी ?

शाही जमाने के अच्छे-अच्छे पेड कटवाकर इन घास-

जिन्होंने यह रोजा बनाया था, क्या वे यह जानते होंगे कि किसी दिन इस पर अन्य मतावलम्बियों का अधिकार हो जावेगा ?

अंगरेज मुसलमान बादशाहों की तरह अच्छी-अच्छी इमारत क्यों नहीं बनाते हैं ?

क्या योरप में भी किसी ईसाई मतावलम्बी राजा ने अपनी बीबी या माता की यादगार में ऐसा मकान बनवाया है ?

उन दिनों ताजगंज में यमी तन्नूसिंह नामक एक अच्छे कवि रहते थे। शहर आगरे के बहुत से कविताप्रेमी उन्हें अपना गुरु मानते थे। सत्यनारायण भी उनके यहाँ जाया करते थे। सम्भवत सत्यनारायण ने तन्नूसिंहजी से कविता करना सीखा हो। सत्यनारायण हिन्दी के साथ इंगलिश भी पढते थे। उन दिनों स्कूल में जिला एटे के एक नायबमुदर्रिस थे जो अंगरेजी मिडिल फेल थे। उन्हें २ या ३ रुपये मासिक सत्यनारायण की माँ देती थीं। सत्यनारायण बडी योग्यता के साथ हमारे ताजगंज स्कूल से पास हुए थे और उन्हें अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक इनाम मिला था।''

ताजगंज से सत्यनारायणजी मिढाकुर के ब्राउन स्कूल में पढने के लिये गये। सत्यनारायण के सहपाठी श्रीयुत दरबारी लालजी शर्मा अध्यापक अकोला लिखते हैं —

''प्रारम्भ में मुशी हरनारायणजी (वर्तमान अध्यापक फतहपुर) और मैं छात्रवृत्ति परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मदर्सा

हँसोड थे। हम लोगों के पिता जब गाँव से आते थे, तो उनके चले जाने के बाद सबकी हूबहू नकल उतारकर सहपाठियों को खूब प्रसन्न करते थे। इनकी माता जब आती थीं तो सहपाठियों को अपने लडके की तरह प्यार करती थीं। सत्यनारायणजी अपनी माँ के लाडले होने के कारण ऐसे चलते थे कि हम लडकों ने उनका नाम 'पङ्गा' रख दिया था। दरबारीलाल के पिता की सी पगडी बाँधकर उनकी बोली की नकल करते थे। दरबारीलाल ठेंटा होने पर भी घूँसा मारने में पटु था। उसके शरीर में बल भी था। जब सत्यनारायण पर क्रोध करके कोई आता भी तो वे इस तरह बैठ जाते और हा-हा खाने लगते थे कि वह भी अच्छा मालूम होता था। मैं छोटा होने पर भी उनकी कलाई को मरोड देता था, क्योंकि उनके हाथ भी नाजुक थे और शरीर में बल भी कम था। लेकिन पढने में ये बडे तेज थे। व्याकरण, हिसाब और गुटका की कविता में तो अव्वल ही रहते थे। लिखने-पढने में अच्छे रहने से रौब भी जमाते थे, पर गर्व से नहीं, हँसी में। सहपाठियों को सवाल बता दिया करते थे। बराबर हँसमुख रहते और सबसे प्रेम करते थे। उनके सरल तथा निष्कपट प्रेम का एक उदाहरण देना अप्रासङ्गिक न होगा।

जब मथुरा में मैं पहले पहल सत्यनारायणजी से मिला तो मैं बडी खातिरी से पेश आया। यह बात सत्यनारायण को अच्छी नहीं लगी। गले से मिलकर आपने कहा—"भैया मैं तो तेरौ वही पङ्गा हूँ"।

कभी-कभी सत्यनारायणजी बड़े प्रेम के साथ कहा करते थे—"कवि कुन्दनलाल मिढ़ाकुरवारो"। श्रीयुत् मुंशी कुन्दन लालजी (मुख्याध्यापक टाउन स्कूल मिढ़ाकुर) ने ही सत्य नारायण को हिन्दी मिडिल की परीक्षा दिलाई थी। मुंशीजी अपने २६।७।१८ के पत्र में लिखते हैं —

"अनुमान से २३ वर्ष व्यतीत हुए होंगे कि सत्य-नारायण यहाँ मिढ़ाकुर, मुझसे विद्याध्ययन करने के लिए आये थे। उस समय उनकी अवस्था १३ वर्ष की थी। बाल्यावस्था से वे सुशील स्वभाव तथा तीव्र बुद्धि कहे जाते थे। परिश्रमी अधिक थे और सहपाठियों की भलाई में रहते थे। अध्यापकों के शुभचिंतक थे। विद्यार्थी-धर्म में कोई त्रुटि नहीं करते थे। सदाचारी होने में कोई सन्देह नहीं था। अहंकार का लेश भी नहीं जान पड़ता था। बाल्यावस्था से ही सत्यनारायण सनातनधर्मावलम्बी कहे जाते थे। उनकी कवित्व-शक्ति अच्छी थी। मैंने कई विद्यानुरागी पुरुषों को उनकी प्रशंसा करते हुए सुना है। आरम्भकाल में कविता की ओर उनका ध्यान यहीं से आकर्षित हुआ। श्रीमान् जो लिखते हैं कि 'सत्यनारायण ने आपसे कविता करना सीखा' सो यह लिखते हुए मुझे सङ्कोच होता है कि प्रथम तो मैं कविता के अङ्गों से अनभिज्ञ हूँ, द्वितीय कोई बृहद् पिंगल ग्रन्थ देखने का अवसर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। गणादि तक का ज्ञान भी मुझे पूर्ण रूप से नहीं है। छन्दों के लक्षण, काव्य के नव रस मात्र मैंने औरों से श्रवण किये हैं। काव्य का जानना, करना

कठिन है। जब काव्य शास्त्र में मेरी यह अनभिज्ञता है तो पंडित सत्यनारायण की अन्तिम योग्यता के विषय में मैं क्या लिख सकता हूँ। सत्यनारायण वर्तमान समय के कवियों में कविरत्न कहे जाने के योग्य थे। उन्होंने मेरे यहाँ शिक्षा पाई थी, इस कारण उनकी विशेष प्रशंसा करना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। कैसे दुर्भाग्य और खेद की बात है कि शिष्य की मृत्यु के अनन्तर शिक्षक को उसके विषय में लेख लिखना पड़े!

अपने एक स्वर्गीय शिष्य के विषय में अधिक क्या लिखूँ, कुछ समझ में नहीं आता —

सत्यनरायण नाम करि, सत्य नरायण काम।
सत्यनरायण ह्वै गये, सत्यनरायण धाम॥
सत्यनरायण यश लह्यो, लहि साहित्य विचार।
जिनकी कविता के पढ़े, मिटहिं मलिन विकार॥

जिस समय सत्यनारायण मिढ़ाकुर में पढ़ते थे उस समय की उनकी एक नोटबुक सौभाग्यवश हमें मिल गई है। इतिहास भूगोल इत्यादि विषयों को याद करने के लिए उन्होंने इस नोटबुक में कितनी ही तुकबन्दियाँ लिख रक्खी थीं। गवर्नर-जनरल तथा वाइसरायों के नाम याद करने के लिए यह पद्य लिखा गया था —

कम्पनी सुनिश ने प्रथम ही प्रबन्ध हेतु,
वारन हेस्टिङ्ग गवर्नर जनरल बनाये हैं।
सरजान मेकफर्सन चन्द्र राजा राखि,
मार्क्विस आफ कार्नवालिस फिर में पठाये हैं॥

सरजान शोर के बनायो लार्ड टनमोथ,
मलरड क्लार्क चन्द राज श्री छिपाये हैं।
लार्ड मार्निङ्गटन हिन्द के बढ़ायो राज,
याही काज मारक्किस निलिजली कहाये है ॥
इत्यादि।

भूगोल भी सुनिये।

इर्कटस्क रूस की अरु चीन की पक्किन जान,
तिब्बत की राजधानी लासा पहचानिये।
मनीला मंचूरिया की किकिहारआ कोरिया की,
उरगा मंगोलिया की निश्चै कर मानियें।
टोक्यो जापान की अरु मंडले है बर्मा की,
श्याम की बंकाक न्, अनाम की बखानिये।
लंका की कोलम्बा और मक्का अरब की जान,
यारकन्द तुर्किस्तान पूर्वी की जानिये।
इत्यादि।

ता० २७ सितम्बर सन् १८९६ ई० को सत्यनारायणने वीर विक्रमाजीत के नवरत्न याद करने के लिए निम्नलिखित पद्य बनाया था —

धनोत्तरी क्षपनक कहो, अमरसिंह को मान।
शंक बैताल बराह अरु, कालीदास बखान ॥
घट परपर और महरयुत, बररुचि जानो भाय।
वीर विक्रमाजीत के, यह नवरत्न कहाय ॥

जिस समय सत्यनारायणजी हिन्दी मिडिल में पढते थे उन्हीं दिनों में उनकी माता बीमार पड़ गईं। उस समय आपने यह पद्य बनाये थे —

माता की आरोग्यता के हेतु विनय

सुनियो साँवलिया साह मेरी गज की सी टेर।
मम माता मेरी प्राण सजीवन ताके दिवस अब फेर।
भक्तन के दुख हरण सदा तू मेरी बेर अबेर।
ध्रुव प्रहलाद उबारि कष्ट तें निरम रहे किहि फेर।
सत्येन्द्र आरत शरणागत मेरे दुख निबेर।
करियो आनँद आनँद कन्द।
तुम्हरी कृपा कटाक्ष के कारण विचरें जन स्वच्छन्द।
जब जब भीर परी भक्तन पै काटे तुम तिन फन्द॥
कठिन कष्ट बस मम माता अति सुनहु सच्चिदानन्द।
कौन नसावे भला आप बिन सत्यनारायण के दुख द्वन्द॥

इन पंक्तियों में सत्यनारायण का प्रेम-पूर्ण स्वभाव प्रक होता है। समालोचक महाशय कह सकते हैं कि "इन पंक्तियों कुछ भी नवीनता नहीं है। वेही पुराने शब्द और वेही पुरा भाव हैं। कविता की दृष्टि से इनका महत्व नकुछ के बराबर है ये तो पुराने ढर्रे की सूखी तुकबन्दियाँ हैं।" यद्यपि समालोच के इस कथन में बहुत कुछ सत्यता होगी, तथापि इन पद्यों यहाँ उद्धृत करने का उद्देश्य सत्यनारायण की कविता के महत्व को दिखलाना नहीं है। हम उनके स्वभाव पर प्रकाश डालन चाहते हैं, और साथ ही साथ उनकी कविता के क्रम-विकास भी प्रकट करना चाहते हैं। सत्यनारायणजी की 'सरोजनी-पट् पदी' एक उत्तम कविता है, और 'सुनियो साँवलिया साह मेरी

आनँद आनँदकद ' ये तुकबन्दियाँ 'सरोजनी पट्पदी' से बीस वर्ष पहले की हैं। यह आशा करना व्यर्थ है कि इन तुकबन्दियों में 'सरोजनी पट्पदी' की सीसरसता और सौन्दर्य हो। लेकिन विकास की दृष्टि से इन तुकबन्दियों का महत्व 'सरोजनी-पट्पदी' से कदापि कम नहीं है। किसी नसैनी के नीचे के डंडे भी उतने ही अधिक आवश्यक है जितना कि सब से ऊँचा डंडा। एक साथ छलाँग मारकर कोई पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता। उसे धीरे धीरे चढ़ना होता है। पहाड़ की किसी ऊँची चोटी पर बैठे हुए आदमी को देखना उतना मनोरंजक कदापि नहीं होसकता जितना उसे धीरे धीरे चढ़ते हुए देखकर होता है। जिन सत्यनारायणजी ने सन् १९१८ई० में इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंच पर 'श्रीगान्धी-स्तव' जैसी उच्च कोटि की कविता पढ़कर सहस्रों मनुष्यों को मन्त्र-मुग्ध कर दिया उन्हीं ने बीस वर्ष पहले अपने एक बीमार मित्र के अच्छे हो जाने के लिए निम्नलिखित तुकबन्दी की थी —

जगबहादुर* के रोग के हेतु

प्रभु तुम कैसे दृढ़ रहे।
जब तुम नाथ उबारयो करी कूँ नाना दुख सहे।
गरुड़ त्यागि तुम आय बचायो नंगे पाँय बहे॥
जंगबहादुर दास तुम्हारो ताकूँ ताप गहे।
मनुज रोग चहुँ ओर सो आकर निशिदिन तनहिं दहे॥

* पं० कल्याणसिंह भार्गव डाक्टर के कुटुम्ब के एक लड़के का नाम।

जब जब यह दुख पावत तब तब रामहिं राम कहै।
सत्यनारायण बेगि बचाओ क्यों यह ठाठ ठये॥

कहाँ कूँ सिधारे हो हे करतार।

गनिका कीस गृद्ध गज मारे स्ये तिन संकट टार॥
जगबहादुर तुम्हेरो सेवक रोग गयो यहि मार।
ताप कष्टदा अतिहि चढ़ति है अब की लगाओ पार॥
ताके मन की सकल कामना पूरण करि सुखकार।
मौन भये बस बोलत नाहीं सब जग निरजन हार॥
अधिक कृपा करिये तुम स्वामी! कहा कहूँ बारम्बार।
सत्यनारायण आस तुम्हारी अब की बेर उबार॥

जब सत्यनारायण चतुर्थ कक्षा में थे, उस समय उन्होंने
"फोर्थ क्लास में पास होने की विनती" लिखी थी —

हे भगवती कृपा करो तुम भक्त आपनि जानि कै।
पर्चा करौं सब ठीक 'रानी-पुत्र'* निज को जानिकें॥
इम्तिहान रूपी काल ने अब मातु घेर्यो आय कै।
मधवा उबार्यो मातु तैने वेग वेग चलायकें॥

\+ + +

सब जनन को तुम काज करिके मातु जग में अवतरी।
कहा खोट अब मैंने कियो मम बेर कूँ देरी करी॥
हे मातु रसना बैठिकें तुम बुद्धि की शुद्धी करो।
सब काज करिके ठीक माता मोर भव बाधा हरौ॥

एक बार फिर इसी "भवबाधा" "इम्तिहान रूपी काल"
घेरे जाने पर सत्यनारायण ने अपने उद्धार की यह प्रार्थ

"पैशाचवत् इम्तिहान में हे जननि मोको उबारो ।
अरि व्याकरन मेंफिके अस बुद्धि की शुद्धी करो ॥
अर्ताम् करि मोकूँ सदा औ सफल मन काजन करो ।
इतिहास जापे और माता दुग्ध मय मेरे हरो ॥
वरदान दे मोहि मातु करिके कृपा तुव सेवक कहै ।
जो भक्ति तुम्हरे चरण की मम हृदय में व्यापी रहै ॥"

उन्हीं दिनों किसी पत्र में 'भारत निवासी की' समस्या छपी थी। सत्यनारायण ने उसकी पूर्त्ति इस प्रकार की थी —

निस दिन देश दशा हानि जानि रोवत हैं,
याको दुख देखि सुधि रहत न हाँसी की ॥
कृपन भये हो किधौं मौन को गहे हो नाथ !
कृपा उर आवै यह बात नाहिं हाँसी की ॥
दयासिन्धु दया करो, निज उर माँझ धरो,
सामर्थ्य न जानो स्वामि करि तुम फाँसी की ॥
बेर-बेर टेरत जीभ हू सिथिल भई,
अब सुधि लीजिये जू भारत निवासी की ॥

सत्यनारायणजी की उन दिनों की कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं।

एक हू नाहिं अरी ब्रजनागरि धारि दया जिन कंठ लगावै ।
चारु चरित्रन हू ते निकाम जिवाय के क्या न बड़ो यश पावै ।
और न चाहत मैं कछु री सतन्त्र जू एक यही चित भावै ।
प्यारी प्रवीन सनेह सों हेरि कै कंठ लगो तन ताप नसावै ।

दूसरों के दोहों पर सत्यनारायणजी ने अपनी कुछ टीकाएँ भी की थीं। यथा—

दोहा—हरी कंचुकी उच्च कुच अलसानी तिय भोर।
मनहुँ चन्द बदरी छिप्यो निकसत आवे कोर॥

टीका—कारी किनारी हरी कुच कंचुकी सावन कारी घटा सी सुहावै।
पीत उरोज लसैं तिनुसी युग देख चकोर सदा मन भावै।
भामिनि भली बिधि चाय सों प्रात सनै कछु ज्यों अलसावै।
तामें तें दुचकी निकरी जनु चन्द्रकला जग ताप नसावै।

× × ×

दोहा—सहज सहेलिन सों जु तिय, विहँस विहँस बतरात।
मन्द चन्द की चाँदनी मन्द परत सी जात॥

टीका—सहज सहेलिन सों हँसि हँसि प्यारी नह,
घूँघट सों मुँह निकारि बतराति जात है।
लंक लचकति अति, कुच मचकत मंजु,
बनी है सुहाग अरु रंग बरसात है।
उबटन सुहानी अरु चाल मतवाली पुनि,
पैंजनी पगन झनकार सरसात है।
भाषत सों प्यारी ऐसी जानि परे सत्यदेव,
चन्द की ज्यों ज्योति मन्द परत सी जात है।

× × ×

दोहा—नवल बधू करिके चली, बासर सुभग सिंगार।
मनहुँ लियो ब्रजभूमि पर, काम कला अवतार॥

टीका—सुन्दर रूप की राशि बधू शुभ साजि सिंगार चली सों नवीना।
नैन नचावति भौंह मरोरति औ मुसक्याति है प्यारी प्रवीना।

लंक पड़ी लचक पचके अरु पाँय महावर हू शुभ दीना।
शोभित मानो यश। ब्रजमंडल याम कला अनताव सा लीना।
ए सजनी यह नन्द को साँवरा द्रुत गहे नित ही नित फेरी।
कानि करी कबहूँ नहि तैने सुनैक मगी नितको कमि मेरी।
जोबन जोश के जोर म आयके चीन्हे नहीं पर पीर के फेरी।
लाल गुपाल के प्रेम भरे अँखियाँ बसकी न बसाइन तेरा।

इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि सत्यनारायणजी को उन दिनों शृङ्गाररस से विशेष प्रेम था। उनके इस प्रेम से एक बार बड़ी मजेदार दुर्घटना होगई। श्रीयुत सत्यभक्तजी ने विद्यार्थी में लिखा था कि, एक दिन की बात है आपने कृष्ण और गोपियों के विषय में एक शृङ्गाररस पूर्ण सवैया बनाया, और न मालूम क्या सोचकर उसे अपने गुरु महाराज बाबा रघुवरदासजी को सुना दिया। आपने तो सोचा होगा कि गुरुजी हमारी विद्या-बुद्धि पर प्रसन्न होकर शाबासी देंगे, पर वहाँ उलटे लेने के देने पड़ गये। महन्तजी उसे सुनकर बड़े नाराज हुए, और इनके पाँच सात थप्पड़ जमा दिये। उन्होंने कहा कि "अभी से ऐसी वाहियात कविता बनावे है, आगे चल के न मालूम का करैगो। खबरदार जो अबसे आगे ऐसे छन्द बन्द बनाये"।

सुनते हैं कि प्रेम की इन धौलों ने सत्यनारायणजी की शृङ्गाररस की कविता को कम कर दिया, लेकिन सिर्फ थोड़े दिनों के लिये ही। बाबाजी की इन धौलों की याद भूलकर फिर भी सत्यनारायण वैसे ही 'वाहियात छन्द-बन्द' बनाने लगे।

आपकी समस्या-पूर्ति सुनिये :—

चाहे चवाव चहू घा करो सतिदून जु जोरि कहा किन कासों।
काहू की ह्वा तो चलै न सखी नहि जानत रीझत कौन अदा सों।
राधा विसाखा रही इक ओर जु लेहु लगाय सबे* ललिता सों।
जोबन जोर मरोर में आयके कूबरीहू नहिं ऊबरी जासों।
खन्दक खाई लखै न अगार जु नैक जुबान सम्हारि के चालो।
सत्यसु घूम फिरो निमटे सँग बाँधि के ग्वालन को यह टोलो।
वाह! अनार सों आँगिन फोरत! खेलनो हो रग गाढ़ि को गोलो।
जीजा की सौंह परें मनको तुम ग्यार ही मीजा दबोरत डोलो।

इस प्रकार के 'वाहियात छन्द-बन्दों' पर वृद्ध बाबाजी का नाराज होना स्वाभाविक ही था। इस दृष्टान्त को लिखते हुए हमें एक अंग्रेजी कवि 'पोप' की बात याद आती है। जब वे बाल्यावस्था में पद्य बनाया करते थे तो एक दिन उनके पिताजी ने इसी बात पर नाराज होकर उन्हें पीटा। बालक तो थे ही, आप बड़े भोलेपन के साथ बोले —

"Papa Papa pity take
No more verses shall I make"

दिसम्बर सन् १८९६ई० में सत्यनारायण ने सेकेण्ड डिवीजन में हिन्दी-मिडिल पास किया और तदनन्तर वे नियमपूर्वक अंग्रेजी पढ़ने लगे।

---

*अथवा "नेह लगायो अरु ललिता सों"।

अंग्रेजी-अध्ययन

[सन् १८९७—१९१० ई०]



म पहले लिख चुके हैं कि जब सत्यनारायण मिढाकुर में पढ़ते थे तो उनको अंग्रेजी पढ़ाने के लिए उनकी माता ने एक मास्टर को, जो अंग्रेजी-मिडिल फेल थे, नियुक्त कर दिया था। लेकिन उस समय पढ़ाई नियमानुकूल नहीं हो सकी थी। सन् १८९७ ई० में उन्होंने अंग्रेजी अध्ययन फिर ठीक तरह से प्रारम्भ किया। दिसम्बर सन् १८९८ ई० में उन्होंने लोअर मिडिल परीक्षा फर्स्ट डिवीजन में पास की और दिसम्बर सन् १९०० ई० में मुफीदआम स्कूल से अंग्रेजी मिडिल सेकेण्ड डिवीजन में पास किया। जनवरी सन् १९०३ ई० में वे सैण्ट-जान्स कालेजियेट हाईस्कूल से एण्ट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। दो बार एफ० ए० परीक्षा में फेल होने के बाद वे सेण्टजान्स-कालेज छोड़कर सेण्टपीटर्स कालेज में भरती हो गये और अप्रैल सन् १९०८ ई० में उन्होंने सेकेण्ड डिवीजन में एफ० ए० परीक्षा पास की। परीक्षाओं में फेल होने का कारण यही था कि अपने समय का अधिकांश भाग वे कविता करने में लगा दिया करते थे। इसके बाद वे फिर सेण्टजान्स कालेज में दाखिल होगये और सन् १९१० ई० में बी० ए० परीक्षा में शामिल हुए, लेकिन फेल होगये। सन् १९०९ तथा १९१० ई० में उन्होंने वकालत परीक्षा देने के लिए कानून भी पढ़ा था। इस प्रकार उनका अंग्रेजी अध्ययन काल सन् १८९७ से १९१० ई० तक समझना चाहिए। सन १८९७ ई० से लेकर

१६१० ई० तक आगरे की जो धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति रही थी उसका प्रभाव सत्यनारायण के स्वभाव और उनकी कविताओं पर अच्छी तरह पड़ा था। सन् १६०४ ई० तक तो आगरेमें आर्य्यसमाज और सनातनधर्म-सभाओं के झगड़े चलते रहे थे और सन १६०५ में स्वदेशी-आन्दोलन का युग प्रारम्भ होगया था। इसीलिए सत्यनारायणजी के १६०४ के पद्य या तो धार्मिक भावों से परिपूर्ण रहते थे अथवा शृङ्गाररस से सम्बन्ध रखते थे। सन् १६०५ से उनकी कविताओं में देश-भक्ति के भावों का सचार होने लगा था। किसी कवि की कविता पर चारों ओर की स्थिति का कैसा प्रभाव पड़ता है, सत्यनारायण की कविता इसका एक अच्छा उदाहरण है।

उन दिनों आर्यसमाजियों और सनातनधर्मियों म किस प्रकार शास्त्रार्थ हुआ करते थे, उनका विशेष वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। ईश्वर साकार है, या निराकार—इस प्रश्न पर सिर फोड़ने की आवश्यकता को जनता अब अनुभव नहीं करती। लेकिन उन दिनों शास्त्रार्थों की खूब धूम धाम थी। इन शास्त्रार्थों से जनता का मनोरजन होता था, लेकिन आर्थिक लाभ होता था दोनों ओर के उपदेशकों को, और साथ ही मज़ा उड़ाते थे "भज राम कृष्ण गोपाल को इस ओ३म् से क्या होता है!"—गानेवाले सनातनी भजनीक और "मुर्दा का बहाना करके क्यों लेटर-बक्स भरा है"—गानेवाले आर्य्य महाशय।

जब आगरे में शास्त्रार्थों की लहर ज़ोर पर थी तो बहुत से नवयुवक विद्यार्थी उसके बहाव म पड़ गये थे। सत्यनारायण भी

उन्हीं में से एक थे। कभी नागर-सन्यासी आलाराम, कभी व्याख्यान वाचस्पति दीनदयालुजी, कभी अनहद-शब्द ब्रह्मज्ञान का उपदेश देनेवाले हंसस्वरूप के व्याख्यान होते थे। कभी मुकाबले पर "आरिये महाशय" डट कट जाते थे। सत्यनारायण जी को तुकबन्दी करने का अच्छा मौक़ा मिलता था। टूटी पेंसिल से रद्दी कागज पर लिखी हुई कविता, फूटी चिमनी के धुंधले उंजाले में, आँख फाड़-फाड़कर पढ़ते और वाहवाही लूटते थे। सनातनधर्म सभाओं में आपकी खूब पूछ होती थी। सन् १६०० ई० म आपने एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था 'दयानन्दि मद-मर्दन'। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर छपा था —

दयानन्दि-मद-मर्दन

अर्थात्

(श्रीमान् स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी द्वारा
दयानन्दियों की पराजय)

जिसको

पण्डित सत्यनारायणजी सभासद श्रीसनातन-
धर्म सभा आगरा ने बड़े परिश्रम के
सहित सनातनधर्मावलम्बियों के
प्रसन्नतार्थ पद्य में संग्रह किया

पुस्तक के अन्त में लिखा था :—

निकट आगरे नगर के, धाधूपुर है ग्राम।
सुफीदाम विद्यार्थी, सत्यनारायण नाम॥
हरि जन रसिक सुजान हित, करी विनय चित धारि।
होय शब्द जो दोषयुत, लीजो सुमति सुधारि॥

उन्हीं दिनों पण्डित भीमसेनजी आर्य्यसमाज को छोडकर सनातनधर्मी बन गये थे। आगरे में भी वे पधारे थे, और सनातनधर्म-सभा में उनके व्याख्यान हुए थे। सत्यनारायण जी ने उनके व्याख्यानों का वृत्तान्त पद्यों में लिखा था और प० भीमसेनजी के अभिनन्दन के लिए निम्नलिखित पद्य बनाये थे —

मनहीं सराध 'सभी निधिते सु कही नहीं नंकहु ओर कचाई।
केहरि सो दुंद कयो जु करयो सुसमाज सबयो नहि नेक चलाई।
माया के सागर ते हमको सुकृपा करि लीन्हेसि आप बचाई।
पंडित भीमजू आय भले सब भाँति हरी हमरी दुचिताई।

भीमसेन अभिवादन में भी "आर्य्य" लोगों की खूब खबर ली गई थी।

"आर्य्य कहत न लाज अननि जिर्न नक,
जीभ के चलैया वृथा मूड के मरैया है' ॥
इत्यादि

इन पद्यों से प्रकट होता है कि को 'आर्य्य' लोगों से बहुत चिढ को आगे देखा है

पर आश्चर्य करेंगे, लेकिन उन्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस समय ये तुकबन्दियाँ रची गई थीं, उस समय आर्य्यसमाजियों और सनातनियों में इसी तरह की हवा बह रही थी।

श्रीमान् पंडित अम्बिकादत्तजी व्यास के स्वर्गवास पर सत्यनारायण ने कई पद्य बनाये थे। अन्तिम पद्य यह था —

कामिनी काव्य किलोल भरी अति चाय सों डोलै मदा मदमाती।
आप के चाह भरोसे बिना यह रोय रही जलधार बुचाती।
व्यास जू हाय चले कितको तुम छाडि चले किहि पै यह थाती।
हाय रे हाय बिना तुमरे फटि जाति है भारतवर्ष की छाती।

महारानी विक्टोरिया के मरने पर भी सत्यनारायण ने तुकबन्दी की थी। अन्तिम शब्द उन तुकों के ये थे —

'रूप की छटोरिया' 'दुख-नीति की बटोरिया' 'रस की कटोरिया' और "भारत को त्याग गई हाय विक्टोरिया!"

कभी-कभी मजे में आकर आधी अंग्रेजी और आधी हिन्दी में भी कविता कर डालते थे। यथा—

Doing kindness to me
सुकृपानिधि आन इते पग धारिय।
No one helps without you
इतनी हू स्वामि हिये म विचारिये।
Ah! should, I go where Shyam!
सुजेप के यायी कलश निवारिये।

That s prayer Satya to dry

दुखमोचन लोचन कोर निहारिये।

स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों का प्रभाव

जब स्वामी रामतीर्थजी ने मथुरा में व्याख्यान दिये थे, सत्यनारायणजी आगरे के कई आदमियों के साथ उन्हें सुनने के लिए मथुरा गये थे। एक बार स्वामीजी ने सत्यनारायण को अपने कमण्डल से जल आचमन के लिये दिया। सत्यनारायणजी थे रामफटाका-मन्दिर के शिष्य, बड़े घबड़ाये और चिलू के बजाय अँगूठे के ऊपर के गड्ढे में जल लिया और मस्तक पर चढ़ा लिया। फिर तो ऐसे चेले हुए कि स्वामीजी की तरह ओ३म् ओ३म् पुकारते फिरते थे। इसलिए आपका नाम "ओ३म्" भी पड़ गया था! स्वामीजी के एक व्याख्यान के बाद उन्होंने एक कविता पढ़ी थी, जिसके दो पद्य यहाँ दिये जाते हैं।

श्री नटनागर आगर ओ वृषभान लली के अतीव पियारे।
वृन्दबने ललिताई तुते अति कुञ्जगलीन के खेलनहारे।
रनक भक्तन के अति ही अरु दुष्ट दयेनन मारन हारे।
स्वामि हमारे सभी निधि ते कछु बन्दि कहै पद कञ्ज तुम्हारे।
है जनरञ्जन औ दुखभञ्जन गञ्जन सशय के तुम स्वामी।
शुद्ध सनातनधर्म के रक्षक याही के कारण ह्वै रहे नामी।
बाणी पियूष प्रवाह ते आज कियो हमको कृतकृत्य अकामी।
बूडत पार कर्यो हमको जय तीरथराम नमामि नमामी।

स्वामी रामतीर्थजी सत्यनारायण पर बड़े प्रसन्न होगये थे। कहा जाता है कि वे सत्यनारायण को अमरीका ले जाना चाहते थे, लेकिन उन्होंने वृद्ध बाबा रघुवरदास की सेवा छोड़कर जाना उचित नहीं समझा। स्वामी रामतीर्थ जी जहाँ-जहाँ जाते उनके साथ सत्यनारायण भी जाते थे और उनके उपदेशों में मस्त रहते थे। पढ़ना-लिखना सब भूल गये थे। सत्यनारायण के मित्रों ने उन्हें बहुत कुछ समझाया, लेकिन आपने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। लोग उन्हें पागल कहने लगे और तरह-तरह से हँसी मजाक उड़ाने लगे। उस समय सत्यनारायण ने यह गजल बनाई थी —

यह पागल होना तो हमको मुबारिक हो मुबारिक हो।
सभी जगजाल से छुटना मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
जो कोई जानना चाहे कि दुनियाँ का रहस क्या है।
इस पागलपन समाजाना मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
सभी मिथ्या सभी मिथ्या यह जीवनमरण भी मिथ्या।
अब प्रेमपूर्ण हो जाना मुबारिक हो, मुबारिक हो।'
पागल होने को ऋषि मुनि भटकते फिरते जंगल में।
पागलपन समझ जाना मुबारिक हो मुबारिक हो॥
असल को पा लिया जिसने उसी का नाम पागल है।
पागलपन गले पड़ना मुबारिक हो मुबारिक हो॥
सत्य होना चाहता पागलों का बादशाह।
हमको हमारी यह हुआ मुबारिक हो, मुबारिक हो॥

इसके बहुत दिन पीछे सत्यनारायण ने स्वामीजी के विषय में एक अष्टक भी बनाया था, जिसका नाम था श्रीरामतीर्थाष्टक यह 'सरस्वती' में छपा था। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीरामतीर्थाष्टक

जय जय ब्रह्मानन्द मगन नित मन हरसावन।
जय अमन्द सुन्दर मनोहर रूप सुछवि सरसावन।
जय विशुद्ध वेदान्त 'व्योम' नव मग दरसावन।
जय सिद्धान्त उजास 'राम वरसा' बरसावन।
जय पुलकित तन पावन परम, प्रफुलित प्रिय प्रेमायतन।
जय जग दुरलभ आचार्य वर, आर्य्य रत्न गर्भा रतन॥ १॥

जय तपचर्या उदाहरण मनहरन सु अनुपम।
जय नित नवल उमङ्ग भरन गुनगन हिय उत्तम।
जय उदार पर हित सुधार-रत भारत प्रियतम।
जय जिय जानन हार राउ अरु रंक एक सम।
जय वर विराग अनुराग प्रद, गद्गद हिय सत सुहृद्वर।
जय पद पद पर स्वातन्त्र्य प्रिय, विसद प्रेम पंकज भ्रमर॥ २॥

जय पञ्जाब मराल बाल गुन मञ्जु माल धर।
जयति स्वमत प्रतिपाल सुमति गति रुचि रसाल वर।
जय विनोद मत विमल सुधाकर कर उज्जल तर।
जय स्वजन्म वसुधा सेवा रत निरत निरन्तर।

जय भव-भय दारुन दुख हरन भेद हरन तारन तरन।
जय परन मृदु स्वर सों "प्रणव" उच्चारन धारन करन ॥ ३ ॥
जय कुभाव कुल-कदन सरलता रदन सुहावन।
चारुवदन मन मदन मदन मोहन मन भावन।
जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी[1] सङ्गी पावन।
ब्रज ब्रजभाषा भक्त भक्ति रस रुचिर रसावन।
जय जग कलोल कर लोल अति गोल चन्द प्रियतम परम।
धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भव भय भरम सम ॥ ४ ॥
जय भ्रम भ्रमय दुरावन द्रुत तर छोह छुड़ावन।
आरज सुयश बढ़ावन वैदिक ध्वजा उड़ावन।
जय विदेश विद्वान चकित चंचल चित चोरन।
नित अशेष उपदेश प्रचुर पीयूष निचोरन।
श्रुति विमल विविध प्रमान जुत दे दै श्रुति परिचय प्रवल।
जय जयकुमार[2] जय पान जिय भारत रति राची नवल ॥ ५ ॥
विशद उपनिषद पदम 'अलिफ'[3] षटपद गुंजारन।
घुघर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन।
सुलभ सुज्ञान अमान मनोविज्ञान उधारन।
भारत-उत्था सुधारन सब तन मन धन वारन।
जय मन्द-मन्द आनन्द-रस पारायण पयिया अमद।
जय निरत आत्मरत सतत सत, सतनारायण हिय सुखद ॥ ६ ॥
यह आसम आज अगाम अमर अनुपम और अक्षय।
तजि यासों सम्बन्ध प्रकृति में प्रकृति होति लय।

---

१ अमेरिका २ शालिग्राम स्वरूप कृष्ण का प्यारा नाम।
३ उर्दू मासिक पत्र।

यो विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय।
कहा मिलन बिछुरन जबै तुम हममें हम तुममें बसत।
बस बिमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व व्याप्त केवल लसत॥ ७॥

जब लौं देश हितैषिन को भारत में आदर।
जबलौ भुवि अखण्ड शङ्कर वेदान्त उजागर।
जबलौं सुभग स्वदेश भक्ति निरशेष बसति मन।
जबलौ जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमघन।
तबलौ निस्संशय रटहि, रामतीर्थ कीरति अमल।
नित अङ्कित प्रति उर पटल पर, अजर अमर अविचल अटल॥ ८॥

माता की मृत्यु

जब सत्यनारायण लगभग १७ वर्ष के थे, उनकी माता का देहान्त हो गया। उस समय उन्हें जो दुःख हुआ उन्होंने "माता-विलाप" नामक कविता में इस भाँति प्रकट किया था—

तेरे बिना मातु को मेरी काजर आँख लगैहै।
हाथ पाँव करि ऊजर माता को मुख मोर धुवैहै॥
भाँति भाँति के वस्त्र हाथ गहि को मोकौ पहरैहै।
बड़ी फिकर करिके को माता भोजन मोहिं करैहै॥
दत्तचित्त ह्वै मो कहँ माता, तो बिनु कौन पढ़ैहै।
मार पीट के जननि कौन मोहिं बारम्बार खिजै है॥
पढ़े-लिखे की मातु आजते, कौन परीचा लैहै।
भीतर ते प्रसन्न ह्वै माता ऊपर ते जु खिरैहै॥

रामचरित मानस की माता कौन छटा छहरैहै।
टेक मेटि औरन की को निज टेक केतु फहरैहै॥
खुशी होय कर माता मो पै को इनाम अब देगी।
समझि उठनि अपने लालन की कौन हीय भरि लेगी॥
हाय मात! निज वत्सहि तजिकैं कितको जाय सिधारी!
बिना लखैं तुमरे जल बरसे नयनन ते अति भारी॥
जो मैं जानतु ऐसी माता सेवा करत बनाई।
हाय! हाय!! कहा करूँ मात तुव टहल नहीं कर पाई॥

माता के मरने पर सत्यनारायण ने अपने गुरूजी के नाम एक चिट्ठी लिखी थी। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीभगवत्यै नम श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नम

श्री ६ युत प० जी महाराज—साष्टांग दंडवत के पश्चात् सेवक का नीचे लिखा सविनय निवेदन है —

हमारे पापों के उदय से और पुण्यों के क्षीण होने से हमारी प्यारी सुखकारी दीनन हितकारी मा गत मंगलवार ७ को स्वर्गनारी की गोद में सो गई, यह तो शोच चित्त को दाह करही रहा था कि और दूसरी आपत्ति आकर सेवक पर उपस्थित हुई है। अब यहाँ के पंडितगण उनकी त्रयोदशी के विषय में झगड़ा कर रहे हैं। कोई पन्द्रह दिन की कहता है और कोई ठीक तेरह दिन ही की मानते हैं। और महर्षि प्रणीत गरुड़ पुराण में भी यही दिया है यथा—

त्रयोदशेन्हि सम्प्रेतो नीयते यम किंकरैः।
पिंडज देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वित॥

श्लोक १३८, अध्याय २

अपिच

त्रयोदशेन्हि सम्प्रेतो नीयते यम किंकरैः।
तस्मिन मार्गे व्रजतयो ग्रहीत इव मर्कट ॥

श्लोक ४४, अध्याय २ गरुड

इसका और अधिक विवरण उक्त अध्याय के ३२ वे श्लोक से अन्त के श्लोक तक दिया है। इस ग्रन्थ से मालूम होता है कि पश्चात् १३ दिन के हमारी मा को कुछ नही मिल सकता। इससे तेरह ही दिन का कार्य होना योग्य है। मेरे मतानुसार मासिक श्राद्ध वार्षिक श्राद्ध वा अकाल मृत्यु का विषय इससे जुदा है। महाराज! सेवक की प्रार्थना यह है कि पचकों में यदि तरहीं करते हैं तो यहाँ के पंडितों के मत विरुद्ध है, और यदि उनके पश्चात् करते हैं तो गरुड पुराण के मत-विरुद्ध है, और मा को कुछ नही मिलता—अथवा उक्त ग्रन्थ झूठा है या यह श्लोक मिलाये हुए हैं। हाँ, पचकों मे दाह कर्म करना मना है सो यहाँ पर यह काड उपस्थित नही। कृपा कर जैसी सेवक को आज्ञा हो वह करें, क्योंकि यह प्रथा बहुत प्रचलित भी नही है। शेष मिलने पर।

अभागा सत्यनारायण

धाँधूपुर, आगरा

मित्र को पद्य मे पत्र

उन दिनों सत्यनारायणजी सनातनधर्म का प्रचार करने के लिये भी आस पास के ग्रामों में कभी-कभी जाया करते थे, यह बात

निम्नलिखित पत्र से, जो उन्होंने अपने किसी मित्र को भेजा था, प्रकट होती है।

पत्र

सिद्धि श्री सद्गुण ते भूषित पावन परम पियारे।
राम राम बहु बार हमारी लेहु प्रथम सुखकारे॥

ता पाछे चित दै सुन लीजे कछुक हाल अब मेरो।
यहँ प्रिय कुशल सबहि विधि चाहत तेरो कुशल घनेरो॥
बहु दिन तें नहिँ भेजी पाती छाती दरकति मेरी।
करक करेजा नित ही करकत निठुर बुद्धि कहा तेरी॥
अब हू सोचि समझ कर बेगो कछुक दया उर लावो।
मन दुख पीर तीर सी खरकत ताकों तुरत मिटावो॥
कारण बिना हाय क्यों प्यारे नाहक क्रोध तुम कीन्हो।
दुष्टराज के बस में ह्वै के क्यों अपयश सिर लीन्हो॥
जाते लखी परै अब मोकों क्रोध तुम्हार पियारो।
राखि लियो ताही ते निज उर मोकों हाय बिसारो॥
कलुषित कर तेरो मन दीपक तेल सनेह जरावै।
हहरि हहरि कर मेरे हिय को ये ही मित्र हरावै॥
सबही काज नसावै याते दूर करो तुम याको।
मन दृढ करि कटि कसैं पियारे पकरहु शान्ति ? ताकों॥
माता त्यागि स्वर्ग को ध्याई तुम क्यों अब मुख मोड़यो।
सहपाठी पन भूलि मित्रका बढ़यो प्रेम अब तोरयो॥
हा हा करि कर जोरि कहौं नैक पत्री बेग पठावो।
बिरह वन्हि अभ्यन्तर लागी ताकों बेग नसावो॥

पाय लगन निज पितु माता सन कहियो अति ही मेरो।
राखें कृपा जानि जन अपनो हौं उनको हौं चेरो॥
गुद्ध सनातनधर्म के रक्षक डालचन्द जो प्यारे।
छत्रसाल तिनके सुत आदिक अरु जो मित्र हमारे॥
आशिर्वाद कहो तुम मेरो खूबहि सुखी मनायें।
दम्भी और पाखण्डी मत को जरते खोद नसायें॥
पढ़े आगरे बीच विप्रवर जो बेनीपरसाद।
कह तिन सो पालागन मेरो मित्र सहित अल्हाद॥
श्री पण्डित ईश्वरप्रसादजू भागनलाल के भ्राता।
जाय मदरसा तिनते कहु तुम पालागन मम ताता॥
विनय सहित विनती करि दीजो पत्रिहु नाँहि पठाई।
किहि कारण इतने दिनान सों अदया दृष्टि लखाई॥
कछुक दिनन के माँहि आप के ग्राम बीच मैं आवौं।
विनय सनातनधर्म सभा की तुमकों खूब सुनावौं॥
अब कछु और लिखत नहिं आवै करहुँ इत्यलम ताते।
सुधिकर शीघ्र पत्र तुम भेजो सुखी होय मन जाते॥

श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त की भविष्य-वाणी

२२ अगस्त सन् १९०३ के "भारतमित्र" में सत्यनारायण की निम्नलिखित कविता छपी थी—

बिरथा जन्म गमायो अरे मन।
रच्यो प्रपंच उदर पोषण कों राम कौ नाम न गायो।
तरुणिन तरल त्रवलि कों लखि कें हाय फिरयो भरमायो॥

रह्यो अचेत चेत नहिं कीन्हो सगरो समय वितायो।
माया जाल फँस्यो हा प्रभुतें उरझि भलो बौरायो॥
पर तिय को हिय देत न हियकत नैंक नही सरमायो।
भगवा भेष धर्यो ऊपर ते नाहक मूड मुडायो॥
जन मन रंजन भव भय भंजन प्रभु के बिसरायो।
नित प्रति रहत पाप में रत तू कबहु न पुण्य कमायो॥
सगनमय के नाम तज्यो विषयन सों लिपटायो।
सत्यनारायण हरिपद पकज भजो होय मन भायो॥

२५।५।१९०३

इस पर टिप्पणी करते हुए श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त ने लिखा था—

"यह एक बालक की कविता श्रीयुत प० श्रीधरजी पाठक की मार्फत हमारे पास पहुँची है। बालक तबियतदार है। यदि अभ्यास करेगा तो भविष्य में अच्छी कविता कर सकेगा। अपनी तरफ से हम इतना ही कहते हैं कि भाषा जरा वह और साफ करे और कुछ नये ढङ्ग की कविता में अभ्यास बढ़ावे, क्योंकि जिस ढङ्ग की वह कविता है वैसी हिन्दी में बहुत अधिक और उत्तम से उत्तम हो चुकी है।"

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस "तबियतदार बालक" के विषय में गुप्तजी की भविष्यवाणी कितनी सच हुई। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सत्यनारायण की कविता को प० श्रीधर पाठक ने "भारतमित्र" सम्पादक के पास भेजा था। सत्यनारायण पाठकजी की कविता के बडे प्रेमी और पाठकजी के कृपा पात्र थे।

द्विवेदीजी से परिचय

सन् १९०३ के अन्त में सत्यनारायण का परिचय प० महावीरप्रसादजी द्विवेदी से हुआ। द्विवेदीजी की एक चिट्ठी, जो उन्होंने सत्यनारायण को ३२।१०।०३ को भेजी थी, यहाँ उद्धृत की जाती है।

JHANSI 30-10 03

DEAR BABOO SATYANARAYAN,

The frankness with which you have written your letter has immensely pleased me If I have occasion to come to Agra I shall ask you to kindly come to see me at G I P Ry, Agra city Booking office in Rawatpara Your description of Hemant will appear in Saraswati either in December or January

Yours Sincerely,

MAHAVIRPRASAD

इसके बाद ३० दिसम्बर सन् १९०३ को द्विवेदीजी ने एक कार्ड फिर अँगरेजी में भेजा था, जिसका तात्पर्य्य यह था कि पहली जनवरी को ११ बजे सबेरे रावतपाडे में मुझसे आकर मिलो। हम समझते है कि सत्यनारायण को द्विवेदीजी के दर्शन करने का सौभाग्य पहली जनवरी सन् १९०४ को ही प्राप्त हुआ था। निस्सन्देह द्विवेदीजी जैसे साहित्य-प्रेमी का प्रभाव सत्यनारायण के हृदय पर अवश्य पडा होगा। सत्यनारायणजी की मृत्यु के अनन्तर द्विवेदीजी ने सरस्वती में लिखा था—

"सत्यनारायणजी से हमारा प्रथम परिचय उस समय हुआ था, जब वे ऐण्ट्रेंस क्लास में पढते थे। पेट की प्रेरणा से जब जब हमें आगरा आना पडता था, तब-तब वे मिलते थे। खबर पाते। हमारे ठहरने के स्थान पर आ जाते थे। दिन दिन भर साथ रह थे। ताज गञ्ज के पास अपने गाँव भी एक बार वे हमें ले गये थे इनका असामयिक निधन बडी दु खदायिनी घटना है।"

सत्यनारायण की कविता कभी-कभी सरस्वती में छपा करत थी। इनकी वन्देमातरम् कविता के विषय में द्विवेदीजी ने इन्हें अपने २०।२।०५ के पत्र में लिखा था —

"नमस्कार

वन्देमातरम् पहुंचा। कविता बडी ही मनोहर है। थैंक्स—ऐसे ही कभी कभी लिखा कीजिये। और सब कुशल है।

भवदीय—
महावीरप्रसाद"

स्वदेश-बाधव से सम्बन्ध

जितने नवयुवक 'स्वदेश-बांधव" के द्वारा हिन्दी लिखने की ओर आकर्षित हुए, उतने बहुत कम पत्रों द्वारा हुए होंगे। यह पत्र स्वदेशी-आन्दोलन के युग में आगरे से निकाला गया था और इसके लेख तथा कवितायें देशभक्ति से पूर्ण होती थी। "स्वदेश-बांधव"का मोटो भी सत्यनारायण का बनाया हुआ था।

"देश सेवा चारु उन्नति चातुरी सुविचार।
व्यापार प्रेम पसार अरु नय नागरी परचार॥
सत्काव्य औ कल कला कौशल करनको विस्तार।
कर्तव्य जानि "स्वदेश-बांधव" को भयो अवतार॥"

सन् १९०५ में "स्वदेश-बान्धव" के मुख-पृष्ठ पर यह पद्य छपता भी था। इसके कुछ दिनों बाद से सत्यनारायणजी "स्वदेश-बांधव" के पद्य विभाग का सम्पादन भी करने लगे थे।

श्रीयुत चतुर्वेदी पं० रामनारायण मिश्र से परिचय

सन् १९०४-०६ में चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र आगरे में थे। उनको हिन्दी कविता करने का शोक था। मिश्रजी के प्रभाव से सत्यनारायणजी ने अंग्रेजी ढङ्ग के अनुप्रास अपनी कविता में लाना प्रारम्भ किया था। काश्मीर सुखमा उन दिनों नयी निकली थी। उसी वजन पर वसंत व पावस की कवितायें बनी थीं। "राघवेन्द्र" भी प्रयाग से चतुर्वेदी प० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा ने उसी जमाने में निकाला था। उसमें सत्यनारायणजी की कविता कभी-कभी छपा करती थी।

रैवरैण्ड एल० बी० जोन्स को हिन्दी पढ़ाना

जिन दिनों सत्यनारायणजी सेण्ट जोन्स कालेज में पढते थे। वे एक एग्लोइण्डियन सज्जन को हिन्दी भी पढाते थे। ये महाशय आजकल ढाका के वैप्टिस्ट मिशन में काम करते है। जब इन्होंने रैवरैण्ड डेविस (प्रिंसपल सेण्ट जान्स कालेज, आगरा) के पत्र में सत्यनारायण की मृत्यु का समाचार पढा तो इन्होंने डेविस साहब को अपने ५ फरवरी सन् १९१९ के पत्र में लिखा था —

"First let me say how grieved I am over the news ..n send I discovered for myself, ten years ago, some .. the worth of the Late Pandit and we became very ..iendly He was then in the Government College He ..ade me, through his close knowledge of it, a keen stu..ent of the Ramayan I have still a very good photo of ..m which I took in those days I do not know if you ..ould care to have a copy Once at my request he ..rote a kind of Indian 'Nursery Rhyme' for me in Hindi .. have often repeated it when travelling in North India ..nd it never fails to catch on It might be of interest to ..now how these lines came to be written My elder sister ..Miss Edith M Jones of Woodsfock Mussoorie, felt the ..eed of some Indian equivalent to some of our English ..hymes I asked my Pandit to make the venture and in ..Hindi gave him e g some idea of our Pat a cake baker's ..nan in a crude jingle He seemed very pleased when he ..produced the enclosed lines Personally I think he suc..ceeded admirably Before I came away to Dacca he ..brought me much to my surprise aud delight, about 20 ..lines of affectionate farewell at parting"

अर्थात्—"सब से प्रथम मै आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि आप के भेजे हुए (प० सत्यनारायण की मृत्यु के) समाचार को पढकर मुझे बहुत खेद हुआ है। आज से दस वर्ष पहले मुझे स्वर्गीय पडितजी की योग्यता का कुछ परिचय मिला था। तभी से हम लोगों में बडी मित्रता हो गई थी। वे उस समय गवर्नमेन्ट कालेज में पढते थे। रामायण का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था और उसी के

द्वारा उन्होंने मुझे भी रामायण का एक प्रेमी विद्यार्थी बना दिया। उन दिनों में मैंने उनका एक बहुत अच्छा फोटो लिया था। वह अब भी मेरे पास है। मै नहीं जानता कि आप उस फोटो की एक प्रति अपने पास रखना पसद करेंगे या नहीं। एक बार उन्होंने मेरी प्रार्थना पर हिन्दी में बच्चों का एक गीत बनाया था। उत्तरी भारत में यात्रा करते समय मैंने इसको अनेक बार दुहराया है और जब कभी मैंने इसे कहा है, लोगों को हँसी आये बिना नहीं रही। ये पक्तियाँ लिखी किस प्रकार गई, यह भी सुन लीजिये। मेरी बडी बहन मिस ऐडिथ० ऐम० जोन्स ने मुझ से कहा कि अंग्रेजी में जैसे बच्चों के गीत हैं उनके समान हिन्दी में भी कुछ गीतो की जरूरत है। मैंने अपने पडित (सत्यनारायण जी) से कहा कि आप कोशिश करके बनाइये और मैंने उन्हें कई अंग्रेजी गीतों का भावार्थ हिन्दी में बतला भी दिया। तभी उन्होंने साथ की ये हिन्दी पक्तियाँ बनाईं, और जब बनगईं तो बडे खुश हुए। मेरी सम्मति में उन्हें इन पक्तियों के बनाने में अच्छी सफलता मिली। मेरे ढाका चले आने के पूर्व वे मेरे पास बीस पक्तियों का एक अभिनन्दन पत्र लाये जिसे देखकर मुझे बडा आश्चर्य और प्रसन्नता हुई।"

बच्चो के जिस गीत का जिक्र मिस्टर जोन्स ने किया है, वह निम्नलिखित है—

सुन सुन रे ए रे हलवाई, भूख लगो हे मुझको भाई।
पूरी बेलो जल्दी जल्दी, पीसो अभी मसाला हल्दी।
होवे ज्योंहो गरम कढाई, उसमें दो पूरी छुडवाई।
घी देखो छुन छुन करता है, आँच लगो उबला पडता है।

बिसरैयो जनि जौन्स निरन्तर रस बरसैयो।
सरसैयो नयनेह, कुशलमय पत्र पठैयो॥
निरत नागरी उन्नति में अपनी चित दीजी।
या अबलहि, उद्धारि मुदित निरमल यश लीजै॥
ईश देहि तोहि शक्ति भक्ति नित निज चरनन की।
तिनसों तव मन कसै मृदुता—रति सुवरन की॥
आरत भारत शुभचिन्तक कर्त्तव्य परायण।
होहु, सदा आशीस देतयह सत्यनारायण॥

सत्यनारायण

धाधूपुर—आगरा

पाठकों के मनोरञ्जनार्थ रैवरैण्ड जान्स की एक हिन्दी-चिट्ठी ज्यों-की-त्यों नकल यहाँ दी जाती है।

Regent's Park Hostel,

Dacca आगस्ट ३। १९

श्रीयुत प्रिय बन्धु सत्यनारायण

आशीर्वाद

अनेक दिन से मैं आपकी ओर से एक पत्र की बाट देख रहता हूँ क्योंकि अब तक आप बी० ए० पास हो गये ना, यह बात मैं ठीक जानता नहीं। क्यों भाई हम दो जन आ लोग हैं न, सो मुझको भूलियो ना—किन्तु पत्र लिखने की पारी है—आपका पत्रोत्तर पाया और इससे मैं अति आनन्दित हुआ।

आजकल न हो कि हिन्दी पढ़ना लिखना भूल जाऊँ, मैं प्रत्ये दिन कुछ ना कुछ पढ़ा करता हूँ। उचित है जो कि आप चेले की य समाचार सुनके सुख रहें।

बहुत दिन से मैं जान लिया हूँ कि बङ्गला और हिन्दी में बहुत मेल हैं - किन्तु बङ्गला का उच्चारण में इतना अन्तर है कि कान फटने को है और आगे यहाँ पर कथा-प्रसग में अनेक शब्द व्यवहार करते है जो हिन्दी में केवल पुस्तक में उपस्थित है। वास्तविक दोनों भाषा सस्कृत से निकली है—परन्तु भाई मेरी इच्छा हिन्दी पर सर्वदा चलती रहती है और क्या यह तो है न, मेरे जन्म स्थान की बोली। क्या हम जन्म देश भूल सकते हैं, कभी नहीं।

दयामय परमात्मा आपको सुख दे यह मेरा प्रार्थना।

आपका चेला

एल० बी० जोन्स

अपने "चेले" के इन "आशीर्वाद" को पाकर सत्यनारायण को अवश्य ही हँसी आ गई होगी!

सम्भवत इन्हीं पादरी साहब की पढाई के विषय में श्रीसत्य भक्तजी ने एक घटना "विद्यार्थी" में लिखी थी, वह यह है। एक अग्रेजी पादरी आपसे हिन्दी पढता था। उसकी पढाई में तुलसीकृत रामायण का राम-स्वयवरवाला अग भी था। जब पढते पढते वह धनुष-भग का वर्णन समाप्त कर चुका, और उसके पश्चात् उसने "त्रिभुवन घोर कठोर" वाला छन्द पढा तब उसने जिज्ञासा की कि अब तक तो इसमें बराबर दोहा और चौपाई आते रहे, अब क्या कारण है कि यह नवीन ढङ्ग का छन्द लिखा गया। इन अनोखे प्रश्न को सुनकर एक बार तो आप चकरा गये और चकराने की

बात भी थी। पर धन्य है सत्यनारायण की बुद्धि को, जिसने तुरन्त ही एक विचित्र उत्तर सोच निकाला। आपने कहा—"धनुष टूटने के पहले सब लोगों के विचार भिन्न-भिन्न थे। जनक धनुष न टूटने से सीता के अविवाहित रहने की बात सोच कर घबरा रहे थे। सीता जी की मा रामचन्द्रजी के कोमल शरीर को देखकर उनसे धनुष का टूटना असम्भव समझ रही थी। स्वयं सीताजी का चित्त दुविधा में पडा हुआ था और वे ईश्वर से रामचन्द्रजी द्वारा धनुष टूटने की प्रार्थना कर रही थीं। राजा लोगों को खयाल था कि अब धनुष को कोई नहीं तोड सकेगा। इसी प्रकार जनता के चित्त में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हो रहे थे। पर ज्यों ही रामचन्द्रजी ने धनुष तोडा कि सबके विचार बदल गये। इसीलिये सबके विचारों को बदला हुआ देखकर कवि ने भी अपनी छन्द्-प्रणाली बदल दी और अपने विचारों को एक नूतन छन्द में प्रकट कर दिया! पादरी साहब यह सुनकर बडे खुश हुए।

सेएटजान्स कालेज में अध्ययन

सत्यनारायणजी कई वर्ष तक सेएटजान्स कालेज में पढे थे। जब कभी कोई अध्यापक कालेज छोडकर जाता था उसके लिए अभिनन्दन पत्र तैयार करना सत्यनारायण का एक कर्तव्य सा हो गया था। सच तो यह है कि कालेज छोडने के बाद भी जबतक वे जीवित रहे इस कर्तव्य से उनका पीछा नहीं छूटा। कहीं किसी स्कूल या कालेज से कोई शिक्षक या अध्यापक जानेवाला हुआ कि

वहाँ के विद्यार्थियों ने सत्यनारायण को आ घेरा और अभिनन्दन पत्र दो-चार घंटे के अन्दर तैयार करने की आज्ञा दे दी। सत्यनारायण जी का उस अध्यापक से कुछ भी परिचय है या नहीं, इस बात का अभिनन्दन पत्र से कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता था। और सत्यनारायणजी भी एक ऐसे सीधे-सादे आदमी थे कि अपरिचित अध्यापक की विदाई में उनसे कविता बनवाना कोई कठिन काम नहीं था। विद्यार्थी इस बात को जानते थे कि पंडितजी गुड़ की मंडी में, चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक के यहाँ मिलते हैं। बस, सीधे वहीं पहुँचते थे, और अभिनन्दन-पत्र तैयार करा के ही लौटते थे। इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन में और उसके बाद भी आगरे भर में स्वागत-कविता और अभिनन्दन पत्र तैयार करना सत्यनारायण जी के लिये एक निश्चित कार्य्य हो गया था। इस प्रकार से अभिनन्दन पत्रों को हम स्थानाभाव से यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते। इसके सिवाय इन सब में एक से ही भाव हैं, इसलिये उदाहरण के लिये एक-दो का दे देना काफी होगा। प्रिन्सिपल ह्येथोर्न्थवेट को निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र दिया गया था।

॥ श्री हरि ॥

अभिनन्दन-पत्र

श्रीयुत प्रियतम परम सरल हिय सद्गुन आगर।
सदय निरन्तर धीर धर्ममय नितनय-नागर॥

१

कर्मनिष्ठ अति शिष्ट विमल जस प्रद सरसावन।
श्रुति रचना-चातुर्य सुभग उर मोद जगावन॥
दीन हीन छात्रनु के साँचे सुखद सहायक।
श्री जे० पी० हेयोन्‌र्थवेट सुन्दर सब लायक॥
उज्ज्वल उच्च उदारनीति, सब मृदुल सुहाई।
मुखसों कहत बनै न मुदित मन ही मन भाई॥
कौन कौन से तुम्हरे गुन यह कोउ गिनावै।
'तुमसे हो बस तुमहिं' अन्य कोउ शब्द न भावै॥
जबलौं इङ्गलिश भाषा को आगरपुर आदर।
जबलौं सुठि सङ्जौन्स सुघर कालेज उजागर॥
जबलौं सत्य कृतिज्ञ भाव उर बास लहैगो।
तब लौं तुमहरो नाम यहाँ पै अटल रहैगो॥
सुधि आवेगी सरल प्रकृति प्रिय परम तिहारी।
होगी कैसी दशा देखिये हृदय विचारी॥
आप चले निज देश हमैं सौंप्यो किहि हाथा।
जो सब भाँति हमेस देइगो हमरो साथा॥
सब प्रकार सो हर्ष, करक बस करकत यही हमारे।
मिलि तुमसो नित हाय! बिलग अब तुमकों करहिं पियारे॥
तुमहि बताओ कौन भाँति हम धीरज हिय में धारें।
करिके कठिन हृदय निज कैसे तुम्हरी सुधहि बिसारैं॥
होत भले सन्ताप कहा विधि यह विधि प्रबल रचाई।
जाउ आप सन्तोष करैं हम याही में सुघराई॥
यद्यपि प्रेमीजन प्रेमी को परबस हू के त्यागैं।
परि उमङ्ग बस निज उर ताकी उन्नति में अनुरागैं॥

यही सोचि हम तुमकों प्यारे करत विदा सुख पाई।
समाचार निज तुमहि पठावन चहियतु नित सुखदाई॥
तव कर सों पल्लवित सुखद अति जो अनुपम अलबेली।
छई फलित योलेज कीर्ति की कोमल बेलि नवेली।
जापै अचल नेम सों पूरण प्रेम रसहि बरसैयो।
सुधि बुधि जाकी त्यागि बिसारै जनि जाको तरसैयो॥
अधिक निवेदन करहि कहा तुम स्वयं चतुर गुणवाना।
सुमिरि पुरातन प्रीति नीति नित सब को धरियो ध्याना।
औ मिसेज हेयोन्यवेट अरु तुम को सुख सम्माना।
सत्य सनेह सुजस आयुस सत देहि ईश भगवाना॥

सत्यनारायण

सेण्ट जान्स कालेज के Old boys association (पूर्व विद्यार्थि-सम्मेलन) के दिन एक बार सत्यनारायण ने जो पद्य-रचना की थी उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है।

क्यों ये प्रसन्न मुख आज प्रकाशमान।
क्यों ये सुरम्यमन कंज विकाशमान॥
उत्साह क्यों जु लघु दीर्घन में समान।
प्राचीन शिष्य शुभ उत्सव विद्यमान॥
ऐसो दुचन्द सुखकारक हृदय देख।
आनन्द-मग्न मन होत जु मो विशेष॥
देख्यो अतीव अब प्रेम जु औ निवाह।
प्रत्येक वर्ष तव एँ स मिलाप चाह॥
यासों हि क्योंकि मिलियो जग बीच नीको।
याके बिना सकल हास्य प्रियत्व फीको॥

कालेज प्रेम कछुहूँ हिय में जगाओ।
तो सेलिब्रेशन हि वर्ष प्रत्येक आओ॥
... ...
श्री नो प्रवीण नय हास्य रसाधिकारी
साहित्य-मान उर जास सुप्रेम भारी॥
सर्दारसिंह वर्नी अरु स्वर्णकार।
दत्त प्रयत्न तव धन्य रहयो अपार॥
श्रीमत् डरेंट प्रिंसोपल धर्म्मधोर
हेयोर्नवेट गुणशील समान धीर॥
न्यायोपकार रत विज्ञ उदार होय।
हो छात्रप्रेम परिपूर्ण उर त्वदीय॥
श्री हटले अति प्रफुल्लित चित चोप।
घनश्यामदास शर्मा ... ...
औटोमूस प्रिय प्रभृति सु देविदास।
औरो अनेक जिनको सुयश प्रकास॥
शार्दीय काल बहु दुःख उठाय भारे।
प्राचीननवीन सब मित्र इतै पधारे॥
कोन्हीं प्रफुल्ल हम चित्त तव कृपा सो॥
थैंकस्तु थैंक्स तुमको सब भाँति यासो॥
इङ्गलैण्ड भाषा उद्धार वारे। धरै सदा ये सु पूर्व को तेज॥
हिल्लोर के सग कहो पियारे। "चिरायु होवे सजॅान्स कालेज॥"

जिस समय प्रोफेसर सरकार सेण्ट जान्स कालेज छोड़क आगरा कालेज को गये थे, उस अवसर पर भी सत्यनारायण

कविता बनाई थी। प्रिन्सिपल डरैण्ट, श्रीयुत राजू, श्रीयुत त्रिवेदी इत्यादि के लिये अभिनन्दन-पत्र सत्यनारायण ने ही तैयार किये थे।

बिशप डरैण्ट की सम्मति

सन् १७ में सत्यनारायणजी ने बी० ए० की परीक्षा दी, लेकिन फेल हो गये। एक दिन प्रिन्सिपल डरैण्ट साहब ने कहा—

"Passing B A is not the goal of a man's life"

"कि केवल परीक्षा पास कर लेना ही मनुष्य जीवन का उद्देश नहीं है। इस बात का बहुतों ने एक कान से सुनकर दूसरे कान से बाहिर निकाल दिया, पर सत्यनारायण पर उसका पूरा-पूरा असर हुआ और उन्होंने उसी वर्ष से कालेज जाना छोड़ दिया।

बिशप डरैण्ट (Right Reverant H B Durrant, M A, D D, Lord Bishop Lahore) ने अपने २० मार्च सन् १६१६ के पत्र में लिखा था—

"Satyanarain was a pupil of mine for some years at St John's College Agra I remember him well I had a strong personal regard for him as an earnest high minded student with a delightful enthusiasm for his own subjet, Sanskrit" अर्थात् "सत्यनारायण आगरे के सेण्ट जान्स कालेज में कई वर्ष तक मेरे शिष्य रहे थे। मुझे उनका अच्छी तरह स्मरण है। मेरे हृदय में उनके लिये बड़ा प्रेम था, क्योंकि वे एक उद्योगी और उदार चरित्र विद्यार्थी थे और अपने विषय संस्कृत के लिये उनके हृदय में आनन्द दायक उत्साह था"

बादर की कड़ी झड़ी लगी चहुँघा सों वर,
बोलत पपैया "पिय पिय" प्रन पाली है।।
आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत
दीरघ अवाज वाज गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात-वात खात हरसात गात
धोये-धोये पातनु की वात ही निराली है॥"

इस कविता को बनाने और बार बार पढने में इतने प्रेम से लगे रहे कि आप को परीक्षा का ख्याल तक नहीं रहा! परीक्षा जाकर दी तो लेकिन कवित्त की धुनमें इतने मस्त थे कि पर्चा गडबड हो गया और इम्तिहान में उत्तीर्ण न होने पाये।

जब सत्यनारायणजी नवीं कक्षा में पढते थे तो बाइबिल के इम्तिहान में एक सवाल आया था, जिसमें कई पदों की व्याख्या कराई गई थी। एक पद उनमें था—"Render unto Caesar what belongs to caesar and render unto God what belong's to god" सत्यनारायणजी ने कुल परचा छोड इसी पद की व्याख्या हिन्दू-शास्त्रानुकुल करते हुए कापी भर डाली। Mr B W Thomas, जो परीक्षक थे, कापी वापिस करते समय बोले—

"सत्यनारायण तुम एक नई बाइबिल बना डालो!" मन के मौजी ही तो ठहरे!

श्रीयुत सत्यभक्तजी ने "विद्यार्थी" में एक घटना लिखी थी। उसे हम यहाँ देते हैं।

हास्यप्रियता

"हास्य-प्रिय आप बड़े भारी थे। सदा प्रफुल्लित रहते थे। शायद ही कभी क्रुद्ध होते हों। छोटे-बडे बराबरवाले सब के साथ आप हास्यपूर्ण मधुर वार्तालाप करते थे। और तो क्या, गुरुजनों से भी आप अनेक समय हँसी कर बैठते थे। आपकी सुनाई हुई एक घटना हमें याद है। धाँधूपुर गाँव तीन साढ़े तीन मील दूर होने के कारण आप को कालेज पहुँचने में प्राय विलम्ब हो जाया करता था। एक दिन प्रोफेसर ने नाराज होकर पूँछा—"तुम हमेशा लेट करके क्यों आते हो ?" आप ने उत्तर दिया—"ये सभी लडके लेट करके (सोकर) आते है, मैं क्या न्यारा ही लेट करके आता हूँ ?" प्रोफेसर साहब ने और भी अधिक नाराज होकर पूछा कि ये लेट करके कैसे आते हैं। तब आपने कहा कि मुझे तीन-चार मील से आना सो जब शहर के आनेवाले ही लडके देर करके आते हैं तब मेरा क्या विशेष अपराध है। प्रोफेसर साहब चुप रह गये।

पँढने का ढङ्ग

जब कभी आप कोई अच्छी किताब पढते तो बस उसी के कोने पर कविता करके उसके अच्छे-अच्छे भावों को प्रकट कर देते थे।

एक बार आप (Pleasures of life) नामक पुस्तक पढ रहे थे। उसमें टेनीसन का यह पद्य आया—

समाज-सेवा और साहित्य-सेवा

[सन् १९१०—१९१६ फरवरी]



त्यनारायणजी ने कालेज मार्च सन् १९१० छोड़ दिया। इसके बाद वे केवल आठ व और जीवित रहे। उनका विवाह फरव सन् १९१६ में हुआ था। विवाह के बाद समय को वे अपनी Literary dea "साहित्यिक मृत्यु" कहा करते थे। इस प्रक सत्यनारायण को प्रतिभा को विकसित हो के लिये केवल ६ वर्ष का समय मिला, अर्थात् मार्च १९१० लेकर फरवरी १९१६ तक। इन ६ वर्षों के बीच में सत्यनारायण ने जिस निस्वार्थ भाव से और प्रेमपूर्वक समाज तथा साहि की सेवा की, उसी का हम यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे।

हम पहले ही कह चुके हैं कि सन् १९०५ के स्वदेशी आन्दोल के समय से उन्होंने अपनी कविता में देशभक्ति के भाव लाने य प्रयत्न किया था। उस समय के बाद की प्राय अधिकांश कविताअ से यह बात स्पष्टतया दीख पडती है। जिस समय सन् १९० में लाला लाजपतरायजी आगरे आये थे, सत्यनारायण ने उनः स्वागत के लिए निम्नलिखित पद्य बनाये थे—

> जय जय जग विख्यात बिमल भारत भुवि भूषण।
> जय स्वदेश अनुरक्त भक्त नित अरि कुल दूषण॥

जय निशङ्क निष्कलङ्क-पूर्ण भारत शशाङ्क वर।
जय नीतिश सुजान वीर गम्भीर धीर वर॥
जयति परीक्षित सुवरण सुन्दर सुलभ सुहावन।
सफल शुभ्र मन सुमन प्रेम गुन गहन सुहावन॥
अग्रवाल प्रिय अग्रवास सौरभ सरसावन।
कार्य शक्तिमयि देशभक्ति रस बहु बरसावन॥
परम पुण्य मति पूर्ण आप यश सो अनुरागत।
प्रियतम लजपतिराय सुखद सब विधि तव स्वागत॥

हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिये अपील

जब माननीय प० मदनमोहन मालवीय जी, श्रीमान् दरभंगा महाराज के साथ हिन्दू-यूनीवर्सिटी के लिये चन्दा करने के लिये आगरे आये थे, उस समय राजा कुशलपाल सिंह के सभापतित्व में उनके स्वागत के लिए सभा हुई थी। उस सभा में उपस्थित होनेका सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। जब सभा समाप्त हो गई तो माननीय मालवीयजी की मोटरकार के पास मिर्जई पहने हुए कोई नवयुवक खड़ा था, और मालवीयजी उससे कुछ बातचीत कर रहे थे। इसी नवयुवक ने मधुर स्वर में उस सभा में एक कविता सुनाई थी।

उस समय मेरे साथी किसी विद्यार्थी ने—मैं भी उन दिनों नवीं कक्षा में पढ़ता था—मुझसे कहा था—"ये ही सत्यनारायण हैं।" इस प्रकार आज से १३-१४ वर्ष पहले मैंने दूर से सत्यनारायणजी के प्रथम बार दर्शन किये थे। उस समय मुझे क्या मालूम था कि आगे

चलकर मुझे इस सरल सौम्यमूर्ति की जीवनी लिखनी पड़ेगी। अस्तु सत्यनारायणजी की यह कविता यहाँ उद्धृत की जाती है।

स्वागत यह सुख समय पुण्यमय, जो उछाह अति पागे।
आरज विविध कला कौशल कल भल विद्या अनुरागे॥
पर-उपकार सुव्रत सुचि दीक्षित परम प्रेम रँग राचे।
जननी जन्मभूमि के नित नव सब विधि सेवक साँचे॥
तजि सुख दुख को ध्यान मान बिन हिन्दुन को सिरताजा।
परमोदार पुण्य मूरति श्रीदरभंगा-महाराजा॥
सरल हृदय सहृदय सुख पोहन अखिल दुरित दल दूषन।
श्रो सद्गुन गन सदन मदन मोहन मालवि कुल-भूषन॥
तन सों धन सों मन वच क्रम सों जो आरज हितकारी।
स्वर्गादपि गरीयसी जिनको भारत मातु पियारी॥
रचन भारती भवन बनावन अथवा जन मन भावन।
विश्वविदित हिन्दू विद्यालय हिन्दू-गुन प्रकटावन॥
प्रान्त प्रान्त अरु नगर नगर सों धनी गुनी जन भेंटत।
चित अनुसार प्रजा का राजा सब सों दान समेटत॥
पालन निज कर्तव्य, आश करि, अति उमग सो छाये।
सब प्रकार प्रिय पूज्य अतिथि ये नगर आपके आये॥
उपजे या कुल शिव, दधीच, हरिचन्द आदि से दानी।
भुवि विश्रुत मोरध्वज नृप से जग जिन कहति कहानी॥
ता आरज हिन्दू कुल के तुम पूत सपूत कहाओ।
उचित समय यह उचित भाँति सों निज कर्तव्य निभाओ॥
ध्यान पूर्वक यदि सोचो तो जो तुम याहि यथारथ।

याहो में सुख सब विधि स्वारथ याहो में परमारथ॥
ऋषि मुनि की सन्तान उठो अब देखौ भयो सबेरो।
अपनी दशा मिलाय और जातिन सों जग में हेरो॥
सभ्य समाज शिरोमनि पहिले रह्यो आपको भारत।
थिर्यो बिन जल हीन मीन सम वही हाय अति आरत॥
प्रकृति प्रसाद सुलभ सब यासों पै विद्या बल नाही।
चितवत जासों औरन को सुख, दुख भोगत जगमाँही॥
जा कारन निज गृह भारती माकी सेवा कीजै।
तन मन धन सों याहि पुष्टि करि जग दुर्लभ यश लीजै॥
ये सुन्दर आदर्श विराजत प्रियतम इनहिं निहारो।
सब को जो प्रिय काज ताहि सब पूरन भाँति सँवारो॥
कृपा कशाच्छ करोड़ो सों जो धारि सकत सब काजा।
अहो भाग्य प्रिय बन्धु तिहारे द्वार पधारे राजा॥
हिन्दू जाति भलाई के हित भूपति घर-घर जावें।
उज्ज्वल कर्मयोग को ऐसो उदाहरण कहँ पावें॥
भारत को सौभाग्य सूर्य्य वह निरखहु विलसत आवत।
नसि अज्ञान सघन तम राशहिं ज्ञान उजास जगावत॥
जहाँ स्वयं सम्राट आर्जपचम विद्या के प्रेमी।
का तुम कियो प्रजा बनि उनकी जो न होहु अस नेमी॥
वही सकल यह देस सुहावन पावन गुन गन आलय।
वही गगन चुम्बित भारत को उज्ज्वल उच्च हिमालय॥
गंगा यमुना वही वही पूर्वज ऋषि मुनि के नामा।
धर्म धीरता दान-धीरता वही अटल अभिरामा॥
पै कछु को तुम कछु देखियत निज-निज धुनि में फूले।

"मर्यादा" कार्य्यालय प्रयाग से,२३—१–१६११ के अपने पत्र में सत्यनारायण ने बाबाजी को लिखा था—"मैं भाग नहीं आया हूँ, न मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन करके आया हूँ। मैं भला किस बात पर आपकी सेवा से विरत होता! हाय! इस शरीर ने आपको जन्म से दु:ख ही-दु:ख दिये हैं, और अब भी इसी के कारण आप सुख से सो भी नहीं सकते! आपके अपराध और मैं क्षमा करूँ! हरे-हरे!! आपने जो उपकार इस शरीर के साथ किया है, उसको क्षण-मात्र को भी भूल जाने से "नहि निस्तार कल्प सतकोटी"। जब तक शरीर में प्राण है, यह सत्यनारायण आपही का सेवक है—आपके ऋण से कभी कल्पान्त में भी उऋण नहीं हो सकता।

इसके बाद इसी पत्र सत्यनारायण ने सुखदास, द्वारिका, जानकी, चिरंजी, घूरेराम, रामजीत, जौहरी, भवानी और गोबिन्दा इत्यादि ग्रामीण मित्रों से प्रार्थना की थी कि आप लोग ऐसा यत्न करें जिससे बाबाजी कोई सोच न करें।

इस पत्र से प्रकट है कि बाबाजी के लिये सत्यनारायण के हृदय में कितनी श्रद्धा थी। जुलाई सन् १६१२ में बाबा रघुबरदास का देहान्त हो गया। उस समय सत्यनारायण को अत्यन्त दु:ख हुआ था।

बाबाजी की मृत्यु के समय आस-पास के ग्रामों के ब्राह्मणों में फूट फैली हुई थी। उस समय सत्यनारायण ने पचों के नाम जो चिट्ठी लिखी थी उसे हम यहाँ उद्धृत करते है।

श्री

श्रीमान्

मेरे दुर्भाग्य से मेरे आराध्यचरण परमपूज्य गुरूदेव श्री ६ युक्त रघुवरदास जी का देवलोक होगया है। उनके त्रयोदश की तिथि असादसुदी द्वादशी निश्चित हुई हे। उस अवसर पर उनके सभी सज्जन प्रेमियो का कृपया यहाँ पधारना परमावश्यक है। यद्यपि उनकी स्थिति सब के साथ ही थी किन्तु फिर भी किसी जातीय रागद्वेष मे उन्हें सर्वथा मुक्त समझना उचित है। इसी उद्देश को सामने रखते हुए सब भेदभाव को भूलकर यथासम्भव सब सज्जनो की सेवा मे निमन्त्रण भेजने का प्रयोजन है। आजकल ब्राह्मण जाति की शोचनीय दशा सब पर विदित है। उस पर भी परस्पर विरोध के कारण विप्र-वंश की शक्ति का ह्रास प्रतिदिन होता जाता है। ऐसे ही विरोध के सहारे, निमंत्रण देते हुए, दुर्भाग्य से तोरे ग्राम में मुझे लक्षित हुए हैं।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ है कि जिन सदाशय पर्वों की उपस्थिति में इस विद्रोह-बीज का आरोपण हुआ था, उन्ही के फिर सम्मेलन होने पर उन्ही की आज्ञानुसार यह विद्रोह विष वृक्ष समूल नष्ट किया जा सकता है। ऐसी ही आशा के प्यारे प्रकाश से उत्साहित होकर आप सब सज्जनो के चरण कमलो में सादर निवेदन है कि आप यथा समय स्वयं अथवा अपना कोई विश्वास पात्र प्रतिनिधि भेजकर इन उपस्थित विघ्नबाधाओं को दूर करते हुए मेरे भाव और परिश्रम का यथोचित फल देकर कृतार्थ कीजिये। आशा है कि आप आज ४ बजे सायंकाल के समय मेरी इस कुटी को पवित्र करने का कष्ट अंगीकार करेंगे।

सबका दास

विनीत

सत्यनारायण

अफ्रिका-प्रवासी भारतीयों के प्रति सहानुभूति

जिस समय दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह का आन्दोलन चल र था सत्यनारायणजी ने 'एक भक्त' के नाम से निम्नलिखित कवि 'प्रताप' में छपवाई थी—

तुव जस विमल कहाँ लौं गावैं।
जब जब आवति सुरति तिहारी नयन नीर भरि आवैं ॥
बहु बरसनु सौं कठिन जतन करि—यदि किंचित नहि भूलौं—
यह भारत-जातीय-समिति जो कर न सकी अजहू लौं ॥
सो निज भेद भाव तजि, भारज जन जीवन धन प्यारी।
देश धरम मर्यादा थापी तुम सब जन हितकारी ॥
हिन्दू और अहिन्दू अन्तर, यदि वे भारतवासी।
मेटि मुदित तजि स्वार्थ सकलविधि तुम निज सुमति प्रकासी ॥
सहन-शक्ति अरु स्वावलम्ब को उदाहरन दरसायो।
लखि तुव आतम त्याग मनोहर सब संसार लजायो ॥
अन्य कठोर जाति इक ऊपर दूजें देस बिरानै।
सकल भांति असहाय तऊ तुव धीरज नाहिं हिरानै ॥
तन मन धन सरबस सुत दारा सबको मोह विहायो।
केवल भारत जन नैसर्गिक सत्व सुभग अपनायो ॥
तपस्वर्ण सम जगमगात नित राखत दृढ़ विश्वासा।
श्रीनारायण पूर्ण करैं तुव प्रेम-भरी प्रिय आसा ॥

उसी समय 'एक सभासद भारतीभवन फीरोजाबाद' के नाम से 'पति-पत्नी संवाद' नामक कविता आपने 'प्रताप' में ही छपाई थी। वह यह है—

पति-पत्नी-संवाद

१

नाथ ! अब चलिये अपने देश ।
देख यहाँ की क्रूर नीति के होता हृदय कलेश ॥
निभ सकता नहिं यहाँ हमारा पति पत्नी सम्बन्ध ।
बच्चों के भी वारिस बनने में पड़ता प्रतिबन्ध ॥
प्यारे ! बस हो चुका तुम्हारा काम, न करिये देर ।
कौन सुनेगा, किससे कहिये, छाया अति अन्धेर ॥

२

प्रिये ! यह कापुरुषों का काम ।
अभी चले, पर स्वबान्धवों का होगा क्या परिणाम ?
कहाँ जाँयगे करेंगे कैसे वे निष्क्रिय प्रतिरोध ?
राजनीति का जिन्हें न प्यारो, हाय ! जरा भी बोध ॥
यहीं रहेंगे निज स्वत्वों के लिये करेंगे युद्ध ।
चाहे प्राण रहें या जाओ, सोचेंगे न विरुद्ध ॥
जननी जन्मभूमि का भारी चलने में अपमान ।
ऐसे अत्याचारों से क्या खो दें अपनी आन ?
कठिन परीक्षा समय हमारा उचित न करना भूल ।
इसमें जय होते ही होगा हमें दैव अनुकूल ॥
सदा सत्य की जय होती है यह निश्चय विश्वास ।
पूरा होगा निर्भय रहिये, मत हूजिये निराश ॥
भूल व्यक्ति गत चिंता, जानि के इसे देश का काज ।
जगदीश्वर सब भला करेंगे, वही रखेंगे लाज ॥

यहाँ पर यह भी बतला देना आवश्यक है कि यह कविता उ
वार्तालाप के आधार पर की गई थी जो महात्मा गांधीजी त
श्रीमती कस्तूरबाई गांधी के बीच में हुआ था। उन्हीं दिनों सत्
नारायणजी ने 'गांधी-स्तव' नामक कविता 'प्रताप' में छपवाई थ
कुछ परिवर्तन के बाद यही कविता उन्होंने, इन्दौर में अष्टम हिन्
साहित्य सम्मेलन के अवसर पर पढ़ी थी। उस कविता को हम उ
सम्मेलन में सत्यनारायणजी के जाने का वृत्तान्त लिखते सम
उद्धृत करेंगे।

कामागाटामारू की दुर्घटना

जब बाबा गुरुदत्तसिंह और उनके साथी, जो कामागाटाम
जहाज से कनाडा गये थे, वहाँ से लौटा दिये गये, उस समय देश
इस विषय पर आन्दोलन हुआ था। सत्यनारायणजी ने उस अ
"श्री गुरु-नानक के यात्री" के नाम से निम्नलिखित कविता 'प्रताप'
छपवाई थी।

करुणा-क्रन्दन

रे हतभागी भारत देश।
कितना और अधिक बाकी है सहना तुझे कलेश॥
सोचा था अब यहां नृपतिमणि पञ्चम जार्ज पधारे।
धन्य आज से हुए परम हम जागे भाग हमारे॥
स्वीकृत किया हमें श्रीमुख से अपनी प्रजा पियारी।
शिक्षा का उत्साह दिलाया दीं आशायें सारी॥
बृटिश सुराज मात्र की जैसे और प्रजा सुख पावै।

ऐसा ही अधिकार कदाचित हमको भी मिल जावे॥
वर्ण भेद का नहीं लगेगा अबसे कोई रोग।
विमल नागरिक स्वत्व प्राप्त कर भोगेंगे सुख भोग॥
बृटिश पाणि पल्लव छाया में जी चाहे जहँ जावें।
बहु दिन नत निज सिर ऊँचा कर फिर इक बार उठावें॥
निरपराध हमको यदि कोई अबसे कहीं सतावें।
तो उसके निरदय पञ्जों से 'ग्रेट ब्रिटेन' बचावें॥
इन आशाओं के सपनों ने जैसे जी बहलाया।
कान पकड़ 'कैनेडा' के लोगों ने हर्ष जगाया॥
जग को जो आश्रय देते थे सहकर भी दुख सारे।
फिरें निराश्रय उन ऋषियों के सुत यों मारे मारे॥
होता अगर हमारे सिर पर कोई हितु हमारा।
रक्खा रह जाता बस घर में यह कानून तुम्हारा॥
जहाँ जाँय तहँ बड़ी घृणा से वन से जाँय निकाले।
प्रजा भूप निर्बल ऐसे की कहलाते हम कारो॥
काले हैं सन्देह नहीं हम किन्तु हृदय के गोरे।
उच्च उदार सभ्य भावों से हैं नहिं बिलकुल कोरे॥
जब जब जन्म देंह जगदीश्वर तब तब हम हों काले।
उन गोरों से सदा बचावें जो स्वारथ मतवाले॥
ऐरे गैरे पचकल्यानी चले हिन्द में आते।
हम आरत भारतवासी कहीं पैर न रखने पाते॥
इस जहाज के लौटाने में हमें न कुछ संकोच।
पर इङ्गलैण्ड कलंकित होगा यही हृदय में सोच॥

जो इस तरह तरह दे देगा सम्मुख नहीं श्रड़ेगा।
तो प्रचण्ड सब रोष सिंहका जग में सिथिल पड़ेगा॥
होते हुए नाथ के सिर पर हिन्दी जाति अनाथ।
करै सहानुभूति नहिं कोई भुविपर इसके साथ॥
रहना या मरना है इसको कठिन प्रश्न ये भारी।
एक इसी के सुलझाने से सुलझें उलझन सारी।
ऐसा क्यों कमजोर बनाया हमको निरदय दैव।
जो इस भाँति भोगना पड़ता हमको दु:ख सदैव॥
कठिन परीक्षा समय हमारा आगे नहीं टलेगा।
बिना जाँच में पूरा उतरे अब नहिं काम चलेगा॥
"दैव सहाय उसे देता है जो निज करै सहाय"॥
इसमें रख विश्वास हमें भी करना उचित उपाय॥
तकते हुए पराये मुख को अब तक बहु दुख भोगा।
अब से मारग सुगम आप ही अपना करना होगा॥
कुछ चिन्ता नहिं जो विपदा ने इतना हमें सताया।
जगमगाय उतना ही सुबरन जितना जाय तपाया॥
एक प्राण ही उच्चस्वर से यदि हम रुदन सुनावैं।
सोते हुए शेष शायी भी जगकर दौड़े आवैं॥
उनसे ही कहना यथार्थ है वे सच्चे महाराज।
अपनी जन्मभूमि का हमको जान रखेंगे लाज॥

"श्रीगुरु नानक के यात्री"

रवीन्द्र-वन्दना

जब कवि सम्राट श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आगरे पधारे थे, उस समय सत्यनारायणजी ने उनकी सेवा में निम्नलिखित कविता भेंट की थी।

रवीन्द्र-वन्दना

जय जय कवि-कुल तिलक भारती देवि उपासक।
रुचिर रम्य सद्भाव सुभग कर निकर प्रकासक।।
जय जय भारत-कीर्ति धवल धुज जग फहरावन।
विद्युत इव जातीय प्रेम नस नस लहरावन।।
जय विश्वविदित विजयी प्रमुख सौम्य मूर्ति तव लसत नित।
जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन होत नेह नत चकित चित।। १।।
जय जय सहृदय सदय सुहृद नय नागर नीके।
विमल बोल अनमोल चखावन हार अमी के।।
सुपद 'ब्रह्मविद्यालय' 'शान्तिनिकेतन' थापक।
पुण्य प्रभा प्रतिभा के पूरन प्रियतम व्यापक।।
जय जयति बंग साहित्य के उन्नतकर अनुपम अमल।
निज कविताकर विस्तारि वर विकसावन जन हिय कमल।।२।।
सद्शिक्षा आराधन 'साधन' गुन गन आगर।
योगी उपयोगी कारज कृत सुफल उजागर।।
विशद विवेक विकास प्रकाश करत अति सुन्दर।
महा महिम भुवि कोविद उर अधिवसत पुरन्दर।।
यासों मञ्जु 'रवीन्द्र' तव नाम सुभग सार्थक मधुर।
जग अबके अखिल कवीन में लसत आप परवीन धुर।। ३।।

जैसी करी कृतारथ-तुम अँगरेजी भाषा।
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा॥
एक भाव सों रवि ज्यों वस्तुनि वृद्धि प्रदायक।
बरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यों सुरनायक॥
'रवि' 'इन्द्र' मिले दोउ एक जहँ तउ अचरज कैसो अहै।
यह प्यासी हिन्दी चातकी तव रस को तरसत रहै॥४॥

धन्य धन्य वह पुण्य भूमि जिन तुम उपजाये।
धन्य धन्य वह निरमल कुल तुमसे सुत जाये॥
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे।
धन्य धन्य हमहू सब दरसन पाइ तिहारे॥
अस देहिं दिव्य 'देवेन्द्र' वर करहु देश सेवा भली।
यह अर्पित तव कर-कमल में सत्य सुमन गीताञ्जली॥५॥

सन् १६२१ में जब मैंने शान्तिनिकेतन में श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें सत्यनारायण का वह चित्र दिखलाया, जो हृदय तरंग में छपा है और कहा—"क्या आपको सत्यनारायण का कुछ स्मरण है ?" कविवर ने उत्तर दिया—"हाँ, वही हिन्दी कवि-जिन्होंने मेरे नाम के दोनों शब्दों को बड़ी खूबी के साथ अपनी कविता में लिखा था।" कविवर का अभिप्राय "रवि' 'इन्द्र' मिले दोऊ एक जहँ तउ अचरज कैसो अहै" इत्यादि पंक्तियों से था। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि कविवर को ६ सात बरस पहले की बात किस तरह याद रही। सत्यनारायण का मधुर कोकिल स्वर ही

इसका मुख्य कारण था। जिसने उनकी कविता एक बार उनके मुख से सुनी वह उन्हें भूला नहीं।

सत्यनारायणजी की बीमारी

सन् १९१२ के अन्त में सत्यनारायणजी को श्वास की बीमारी हो गई। इस बीमारी के कारण उनको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। सन १९१३ में उन्होंने अपने मित्रों को जो चिट्ठियाँ लिखी थीं उनमें प्राय अपनी इस बीमारी का जिक्र किया। भारतीभवन, फीरोजाबाद के प्रबन्ध कर्ता लाला चिरंजीलालजी को उन्होंने १३ जून के पत्र में लिखा था—"मेरी तबियत वैसी ही है। खाँसी कुछ जोर और पकड़ गई। सोते सोते साँस—नहीं ऊँची ऊँची साँस वेग से चलती है उससे सो भी नहीं सकता।"

२० जुलाई सन् १९१३ के पत्र में आपने फीरोजाबाद के डाक्टर लक्ष्मीदत्तजी को लिखा था—

भैया लक्ष्मीदत्त,

प्रेम रयो पुनि मोहि दुलारे ने,
नहि गयो यहि कारन प्यारे।
अधिक लोगनि सों कछु ना करी,
यदपि इच्छा रामचरित्र की
किन्तु बुखार-प्रताप सों, कास श्वास संताप।
इहि सन में प्राय भयो, न्यून आपनों आप ॥

लखि तव प्रफुलित दर्स हमारो होत सुनिश्चयो।
दुख की बीती रैनि उदित अब सूर्य अभ्युदय ॥
कर्म भीरु उल्लूक छुकन अब लगे अभागे।
देश भक्त वर भ्रमर भ्रमत गुंजारन लागे ॥
श्रुति मधुर मुदित द्विज गान को छाइ रह्यो उत्कर्ष है।
अभिनव आभा सों पूर्ण यह देखहु भारतवर्ष है ॥ ३ ॥

निरुत्साह हेमन्त और पतझर के मारे।
सकें न कछु करि विवश यहाँ के लोग विचारे ॥
असन बसन बिन कम्पत तन अरु अस्फुट भाषा।
किन्तु जियावति तिन्हें एक बस प्यारी आशा ॥
ऐसे जीवन संग्राम में होवहि वांछित काज है।
क्योंकि सुखद आवन चहत श्री ऋतुराज स्वराज है ॥ ४ ॥

भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ।
या स्वदेश में नवजीवन संचार करावौ ॥
बहु दिन के सुसुप्त कों करुणामयो जगावौ।
कल कोमल रसाल वाणी सों याहि उठावौ ॥
जासों यहि आर्यावर्त को नष्ट होइ सन्ताप है।
जग जगमगाय नव जोति सों अनुपम प्रबल प्रताप है ॥ ५ ॥

धन्य धन्य वह पुण्यभूमि जिन तुम उपजाई।
धन्य धन्य वह कुल जिन तुम सी महिला पाई ॥
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे।
धन्य धन्य हमहू सब दरसन पाइ तिहारे ॥
मत विनय प्रवाहित कीजिये देश प्रेम-रस की नदी।
बस अर्पित यह तव क्रोड में श्रीसरोजनी षटपदी ॥ ६ ॥

सत्यनारायणजी ने इस षट्पदी की एक प्रति पं० पद्मसिंहजी शर्मा के पास भेजी थी। शर्माजी ने इसके विषय में उन्हें अपने एक पत्र में लिखा था —

"कल पं०मुकुन्दरामजी की भेजी हुई "श्रीसरोजनी षटपदी" पहुँची। उसे पाकर मेरा मन सरोज विकसित हो गया। खैर, कुछ हो, काव्यदृष्टि से तो यह "षट्पदी" आपकी बढ़िया रही। "श्रीसरोजनी षटपदी" यह शीर्षक बड़ा ही औचित्य पूर्ण है। पढ़कर तबियत फड़क गई! जी चाहता है, धाधूपुर पहुँचकर धूमधाम से इसकी बधाई दूँ। भई वाह! क्या शीर्षक ढूँढ़ा है "श्रीसरोजनी-षटपदी"! सचमुच "शीर्षकौचित्य" के उदाहरणों की चोटी पर बैठाने लायक है। मैं ख्याल करता हूँ, इस शीर्षक के सूझते ही आप भी उछल पड़े होंगे और हर्षातिरेक से झूमने लगे होंगे! ऐसा अनुरूप पद कभी भाग्य ही से हाथ आता है। क्या कहूँ पास नहीं, नहीं तो जी खोल कर 'दाद' के अतिरिक्त कुछ और भी देता! 'सरोजनी' नाम की निरुक्ति "ऋतुराज स्वराज" का रूपक और अन्त में समर्पण, सब ही अच्छे हुए हैं। शाबाश! "ईं कार अज़तो आयदो मर्दां चुनी कुनन्द।"

इस पत्र के उत्तर में सत्यनारायणजी ने जो पत्र लिखा था, उसमें आपने लिखा था — 'आपका कृपा पत्र मैंने अपने सार्टिफिकेट के लिफाफे में रख दिया है। सच जानिये, जितना उत्साह प्रदान आपके इस पत्र ने मुझे किया है वैसा जागीर नहीं दे सकती थी!"

श्रीतिलक-वन्दना

जब लोकमान्य तिलक आगरे पधारे थे उस समय सत्यनारायण जी ने यह कविता पढ़ी थी —

जहाँ हुई दमयन्ती सीता सावित्री सी नारी।
पुण्य-संगिनी प्रेम पद्मिनी आर्य्य सुखोज्ज्वल कारी॥
अबला निपट द्रौपदी ने भी रक्खा मान जहाँ का।
दृढ़ता से वश कोई कर सका उसका बाल न बाँका॥
सहें की पावन ललनाओं को दुष्ट बनावे दारा।
कहाँ सदय गोपाल कृष्ण प्रिय अनुपम मित्र हमारा॥
जो इस दुश्शासन के निरदय कर से हमें बचावे।
जाती हुई लाजपति की जो सकरुण हृदय रखावे॥
किसे सुनावें? कौन सुनेगा? फूट फूट हम रोये।
सद्‌गुण सदन मदन मोहन मोह न तुमको कह सोये॥
आत्म-मान का महत्त्व जगत में दृग पसार कर देखा।
नाथवान हम हा! अनाथ सम जी में यही परेखा॥
यह भारत मानापमान का प्रश्न उपस्थित भारी।
इसके सुलझाने में चहिये शक्ति लगाना सारी॥

पता नहीं सरकार करै क्यों जान बूझ अनजानी।
प्यारे हिन्दू और मुसलमाँ ईसाई हिन्दुस्तानी॥
क्या बूढ़े क्या बड़े मर्द क्या औरत क्या प्यारे बच्चे।
जिनको अपना देश पियारा दयावान हैं जो सच्चे॥
जिनके उर मनुष्यता देवी की पावन मूरति प्यारी।
अथ, सोचिये, कैसी है यह क्रूर लोम हर्षणकारी।
जो अपने निठुर कार्मों से निठुरता के कतरै कान।
बोल गई "सी" हृदय हीनता, सब के हृदय हीन सामान॥

इज्जत। जो सर्वस्व हमारी वह भी लुटती जाती है।
देखो यमें देख शर्मिन्दा तुम्हें शर्म नहिं आती है॥
कहो छाती फटती है तुम बने हुए ऐसे अनजान।
तुम्हें न करुणा आती सुनकर माताओं का कष्ट महान॥
बहिन तुम्हारी बेवश होकर निज मर्यादा खोती हैं।
हाय परम असहाय बिचारी बिलख बिलख कर रोती हैं॥
जो भविष्य को उज्ज्वलकारी छोटी-छोटी हैं सन्तान।
"नहीं कहीं की रही" कीजिये इससे विपति का अनुमान॥
तन मन धन सर्वस्व निछावर इनके दुख पर कर दीजे।
एक प्राण हो एक कण्ठ से इसका आन्दोलन कीजे॥
जिससे मिट जावे यह जड़ से घृणित प्रथा सत्यानासी।
तभी कहाओगे इस जग में तुम सच्चे भारतवासी॥
चिरञ्जीव एण्ड्रूज हमारे सरोजनी पोलक मतिवान।
जिनकी करुणामयी दशा सुन द्रवता है कठोर पाषान॥

इज्जत से भी रुपया पैसा अगर बड़ा सरकार।
निडर कहें हम इस विचार को तो शतशः धिक्कार॥
ऋषियों के कुलीन पूतों को कुली बनाया जाता है।
रण में उन्हें भेजते आगा पीछा सोचा जाता है॥
विमल हमारी राजभक्ति जो चली सदा से आई है।
कैसी अच्छी कदर हुई अब इसके लिये, बधाई है॥
खोकर मान प्रान का रखना पल भर को भी जहाँ दुश्वार।
कौन सहेगा पाँच साल तक ऐसा अनुपम अत्याचार॥
हमसे तो गुलाम ही अच्छा जिसका होता एक हुजूर।
ऐरे गैरे पचकल्यानी के चंगुल से रहता दूर॥

इस बात की बड़ी उत्कंठा थी कि सत्यनारायण इस अवसर पर अपनी कविता पढ़ें, क्योंकि मैं जानता था कि उनकी कविता कितना अधिक प्रभाव डालती थी। इसलिये अपने एक विद्यार्थी के साथ मैं उनके घर गया। दुर्भाग्यवश सत्यनारायण मुझे घर पर नहीं मिले। लेकिन वहाँ से लौटने के बाद ही वे मेरे बँगले पर आये और मुझसे कहा—"क्या आप मुझे तलाश करते थे ?" मैंने कहा—मुझे इस बात की अत्यन्त उत्कठा है कि तुम इस अवसर पर एक कविता पढ़ो ? उस वक्त मीटिंग के समय को सिर्फ आध घंटा बाकी था और सत्यनारायण की वह मूर्ति अब तक मेरी आँखों के सामने है जब कि वे इधर-उधर टहलते जाते थे। उनके होंठ चल रहे थे और वे एक लाइन के बाद दूसरी लाइन कागज़ के एक टुकडे पर लिखते जाते थे। सभा में सब से अधिक प्रभावशाली बात कोई रही तो वह सत्यनारायण की कविता ही थी।"

यहाँ पर यह कह देना उचित और आवश्यक है कि सत्यनारायण जी का, सब से बड़ा गुण उनकी असीम सरलता थी और यही उनकी सब से बड़ी कमज़ोरी थी। इसी कमज़ोरी से लोग मन-माना लाभ उठा कर कभी किसी वैद्य सम्मेलन में घसीट कर हर्र बहेरे तथा आँवले की प्रशंसा कराते थे तो कभी किसी रायबहादुर से की तारीफ में—

"जयति जयति भारती जुगल पद अलि मनभावन।
जय उदारता रतनाकर के रतन सुहावन॥"

इत्यादि पद्य लिखवाते थे। किसी को नाराज करना तो आप जानते ही न थे, इसलिये कोई भी याचक उनके यहां से निराश होकर नहीं जाता था।

अपनी प्रतिभा के पुष्पों को इस प्रकार अट सट आदमियों के सिर पर बखेरना सरस्वती देवी का एक प्रकार से निरादर करना था, किन्तु सत्यनारायण के हृदय में मनुष्यता देवी का आसन सरस्वती से भी ऊँचा था। इसी कारण इस प्रकार की पद्य-रचना उनके लिये एक स्वाभाविक बात थी। *

यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश के आन्दोलनों के साथ सत्यनारायण बराबर चल रहे थे। हिन्दी के अन्य किसी आधुनिक कवि ने उनके समय में देश आन्दोलनों के विषय में इस प्रकार कविता की हो, इस विषय में हमें सन्देह है। सत्यनारायणजी अपनी कविता द्वारा जन-समाज को प्रोत्साहित करने और उसका मनोरंजन करने में वर्तमान कवियों में सब से अधिक सफल हुए, इस विषय में तो किसी को मतभेद न होगा। अपनी रचनाओं से उन्होंने साहित्य का क्या उपकार किया, यह हम दूसरे अध्याय में वर्णन करेंगे।

---

* श्रीयुत शालग्रामजी वर्मा ने अपने एक पत्र में लिखा था—"मैंने पण्डित जी से एक बार इस विषय में कहा भी था कि आपकी ये विदाई पत्र-सम्बन्धी रचनायें प्राय एक सी हो जाती हैं और इनसे आपकी कविता पर परोचरीति में भद्दा प्रभाव पड़ता है। इसके उत्तर में हँसकर पण्डितजी ने यही कहा था कि बहुत से लोगों के कहने का ख्याल करके मुझे ये विदाई पत्र लिखने पड़ते हैं और विषय के एकाङ्गी होने से कविता भी एक सी हो जाती है"।—लेखक।

ढग का स्वतत्र ग्रन्थ कहना अनुचित न होगा। इस लेखक द्वारा किया हुआ उत्तरराम-चरित नाटक का हिन्दी अनुवाद उस समय छप चुका था। मित्रों के अनुरोध से सन् १९१४ को वसन्त ऋतु में मालती माधव नाटक का अनुवाद भी प्रारम्भ कर दिया गया"।

दु ख की बात है कि यह अनुवाद सत्यनारायणजी की मृत्यु के बाद प्रकाशित हो सका, यद्यपि इसके कई फार्म उनके सामने छप चुके थे।

इस पुस्तक के विषय में सैयद अमीरअली 'मीर' ने लिखा था —

"भारत मानसजा ब्रजभाष की, माधुरी जामें रही सरसाई।
भाव ते भाव भरे भवभूति के, भारत नीति की नीकी निकाई।
ओज प्रसाद मयो कविता की बही सरिता सो सदा सुखदाई।
भाइ है 'मीर' मनै मन मोहिनी मालती माधव मजुलताई॥

"माडर्न-रिव्यू" के समालोचक ने इस पुस्तक की आलोचना करते हुए सत्यनारायणजी के विषय में लिखा था —

"The talented author who was a well known figure in the Hindi world and who had command over both a facile and attractive style"

अर्थात् "सत्यनारायणजी हिन्दी-ससार के एक प्रतिभाशाली ग्रन्थकार थे और उनकी लेखनशैली बडी धाराप्रवाह और आकर्षक थी"।

श्रीमान पं० श्रीधर पाठक ने लिखा था—"यत्र-तत्र अवलोकन से प्रतीत हुआ कि इसमें अनुवादक ने विशेष परिश्रम किया है और कृति उत्कृष्ट कोटि की है।"।

'सरस्वती' ने लिखा था—"इस नाटक के जो दो एक अनुवाद हमारे देखने में आये हैं उन सब से यह अनुवाद अच्छा है। सत्यनारायणजी ने अपनी विज्ञप्ति के अन्त में "नयी रोशनीवालों" पर जो कठोर आक्षेप किये हैं उनका उत्तर अब हम नहीं देना चाहते क्योंकि उसके सुननेवाले ही नहीं रहे !"

'सरस्वती' के समालोचक को जो बात बुरी लगी थी वह यहाँ उद्धृत की जाती है। सत्यनारायणजी ने लिखा था —

"आजकल नयी रोशनीवालों को ब्रजभाषा से कुछ चिढ सी हो गई है। शृंगार का नाम सुनकर उनकी आँखों में खून उतर आता है। इसलिये इस अभागी भाषा तथा उक्त विषय पर पहले तो लोग लिखते ही बहुत कम हैं—जो लिखता भी है उसका ग्रंथ आर्थिक दुर्दशा के कारण इस क्रय विक्रयमय ससार में अपनी सूरत ही नहीं दिखा सकता। इस भाँति उत्साह-भंग होते हुए भी यदि किसी के हृदय में कुछ लिखने की तरंग उठे तो उसे फक्कड़ ही समझना चाहिये। कुछ भी समझा जाय किन्तु प्रसन्नता की बात यह है कि जो काम सौंपा गया था वह किसी प्रकार पूर्ण होकर सेवा में उपस्थित है इत्यादि।"

ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है। इसी से ऊपर कहा है कि जो आपके द्वारा संग्रहीत हुआ है, जिसे आपका अवलम्ब मिला है वह अविलम्ब ही अवश्य अवश्य प्रकाशित हो। यद्यपि आपको नहीं चाहिये, तथापि वह आपकी कीर्ति कौमुदी से दिशाओं को मुग्ध करेगा, इसमें एक अक्षर भी मिथ्या नहीं।"

"हृदय तरंग" का हिन्दी-संसार ने अच्छा आदर किया और संग्रह-कर्ता की भी खूब तारीफ की गयी, जिसमें तीन चौथाई के हकदार संग्रह के असली सम्पादक चतुर्वेदी प० अयोध्याप्रसादजी पाठक थे।

"हृदय तरङ्ग"में सत्यनारायणजी की लगभग वे सभी कवितायें प्रकाशित होगयी हैं जो समाचार पत्रों और मासिकपत्रों में निकलीं थीं, और उनके साथ ही 'प्रेमकली' और 'भ्रमरदूत' नामक पद्य प्रबन्ध भी छाप दिये गये हैं।

"भ्रमर-दूत"के विषय में कविवर लोचनप्रसादजी पाण्डेयने लिखा था—"यह हृदयोल्लासिनी और अनूठी रचना है। २५वाँ पद्य मेरे हृदय ज्योति चि०माधवप्रसाद के वियोग में तो कविरत्नजी ने नहीं लिखा? नहीं, नहीं, वैसा नहीं है—न होते हुए भी वह पद्य नहीं, कवितांश—अनुपम कवित्वपूर्ण रचना—मेरे शोक में, वियोग में, सहानुभूति के लिये है।"

२५ वाँ पद्य, जिसने पाण्डेयजी के व्यथित हृदय में अपने स्वर्गीय पुत्र माधवप्रसाद की स्मृति उत्पन्न कर दी, निम्नलिखित है —

"रागत पलाश उदास शोक में अशोक भारो।
बौरे बने रसाल, माधवी राता दुखारो।
तजि तजि निज प्रफुलितपनौ, बिरह-विथित अकुलात।
नद हू द्रु चेतन मनौ, दीन मलीन लखात—
एक माधौ बिना॥"

"भ्रमर दूत' के विषय में श्रीयुत मुकुटधरजी पाण्डेय ने जो सम्मति हमारे पास लिखकर भेजी थी वह भी पढने योग्य है। आपने लिखा था -

"रचना मधुर है। यह ब्रजभाषा का पहला ही काव्यांश है जिसमें देश-कालोपयोगी सामयिक भाव प्रदर्शित हुए हैं—विशेषता यह कि प्राचीन विषय को लेकर। यथार्थ में कविवर सत्यनारायण ब्रजभाषा में सामयिकता लाने के प्रयत्न में शुरू से ही रहे हैं। भाव में ही नहीं, उनके पद्यों के विषय और वर्णनशैली में भी सामयिकता पाई जाती है। 'भ्रमरदूत' में उनका यह यत्न सम्पूर्ण सफल होता, यदि वह इतने शीघ्र लोकान्तरित न हो जाते। इसमें यशोदा ने जो सन्देश भेजे हैं उसके वर्ण वर्ण और अक्षर-अक्षर में स्वदेश प्रेम और जाति हितैपिता टपक रही है। इसको पढते समय ऐसा जान पडता है मानों शोक दु ख जर्जरा स्वय भारतमाता ही अपने हृदय का उद्गार निकाल रही हो। इन गुणों के साथ साथ इसमें प्रासादिकता और स्वाभाविकता भी खूब भरी हुई है। आठवॉ पद्य स्वभावोक्ति अलङ्कार का खासा उदाहरण है। शब्दालङ्कार की तो सर्वत्र बहार है। अधिकांश अलङ्कार-प्रेमी अलङ्कार के पचडे में

वही बात "कालीदह की ठौर जहॅ, चमकत उज्वल रेत—काछी माली करत तहॅ अपने अपने खेत" के विषय में भी कही जा सकती है। पर इस दोप से कविता की उपयोगिता बढ गई है—कोरे समालोचकों की दृष्टि ही उस पर पड सकती है।"

साहित्य-सम्मेलनों पर की गयी कविताएँ

सत्यनारायणजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीन अधिवेशनों पर उपस्थित हुए थे—द्वितीय, पचम और अष्टम। द्वितीय अधिवेशन प्रयाग में हुआ था। इसके विषय में स्वर्गीय मन्नन द्विवेदीजी ने लिखा था—"द्वितीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का समय था। मित्र-मडली मेरी कुटी पर एकत्रित थी। वहीं से मेयोहाल में सम्मेलन देखने जाना था। प० केदारनाथजी, प० जीवनशङ्करजी, सम्पादक पन्नालालजी और मित्रवर बद्रीनाथ उपस्थित थे। हम लोगों की प्रार्थना पर पडित सत्यनारायणजी ने सम्मेलन में पढने के लिये लच्छेदार ओज उपमा-प्रसाद पूर्ण पद तैयार किये थे। अपनी कविता को पढने का ढङ्ग भी उन्हीं को मालूम था। जिस समय आप पडाल में सम्मेलन की स्वागत-कविता पढने लगे, लोग मुग्ध हो गये।"

वह कविता निम्नलिखित थी —

श्रीराधाश्र प्रेम मूर्ति जन वत्सल ललित ललामा।
विगत छद्म सुख सद्म सकल विधि तव पद पद्म प्रनामा॥

जन मन रञ्जन खल दल गञ्जन भञ्जन हित भूभारा।
पुनि बन्दौं भारतभुवि जहँ प्रभु स्वय लियो अवतारा॥
श्रीपति-जन्म स्थान शान्तिमय वेद वितान पुराना।
गुन मण्डित पण्डित रत्ननि को जाको कोश महाना॥
नसी यदपि जो नाशवान छिनभंगुर जिह प्रभुताई।
तदपि विमल विलसति जाके हिय प्रणव वेद निपुनाई।
अटल भारती प्रभा प्रभाकर जा भुवि परम प्रकासा।
का आश्चर्य तहाँ बुधवर मन पंकज करहिं विकासा?
ज्ञानवान साहित्य तत्वविद सुभग सरल हिय सुन्दर।
क्यों न होहिं तहँ भारतेन्दु सम पूरण प्रेम धुरधर॥
तिन कीरति की चारुचन्द्रिका चुम्बन को चित भाये।
जनु हिन्दी साहित्य रसिक उर उदधि उमङ्गत आये॥
वा साहित्य सरोज मधुर मधु चाखन को ललचाये।
अलबेले अलि-वृन्द चहूँ दिशि सों मानो घिरि आये॥
सरस प्रेमघन स्वाँति बूँद कै पीवन को मतवारे।
'हिन्दी' 'हिन्दी' रटत सबै ये सज्जन यहाँ पधारे॥
जननी जन्मभूमि भाषा के जे अविचल अनुरागी।
तिन दरसन लहि चरन परसि हमहूँ अतिशय बड़भागी॥
बड़े भाग सों आज जुरयो यह सम्मेलन, मनभावन।
समयोचित सुप्रयागराज में पुण्य हृदय पुलकावन॥
वृद्ध नागरी भक्त भक्ति की लता लहलही प्यारी।
जाकर जनु यह स्वच्छ पुष्प है सरस सुलभ उपकारी॥
अथवा हिन्दी दुःख दलन का बालकृष्ण को रूपा।
मञ्जुल मधुर मनोमोहन अति सोहन नवलस्वरूपा॥

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी ।
भोरे भारे बसत नेह विकसत ब्रजबासी ॥
जिनके उच्च उदार भाव गिरिसों जग भासा ।
जनमो तारनि तरनि कलिन्दिनि यह ब्रजभासा ॥
जासु सरस निरमल जगजीवन जीवन माही ।
लखियत उज्ज्वल सूर चंद की नित परछाहीं ॥
जिन प्रकास सों ओप प्रकासित सुन्दर लहरी ।
नित नवल रसभरी मनहरी बिलसत गहरी ॥
जिहि आश्रय लहि कलिमलहर तुलसी सौरभ बस ।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबस ॥
केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम ।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम ॥
अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-शोक निकन्दन ।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगबन्दन ॥
तुरत सकल भयहरनि आर्य जागृति जयसानी ।
जन मन निज बस करनि लसति पिक भूषन बानी ॥
बिबिध रंग रञ्जित मनरंजन सुखमा आकर ।
सुचि सुगंधि के सदम खिले अगनित पदमाकर ॥
जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे ।
रहसि रहसि रसखान रसिक अलिगुंजि घनेरे ॥
बरन बरन में मोहन की प्रतिभूति बिराजत ।
अखर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत ॥
सुरपद बरन सुभावे बिबिध रसमय अति उत्तम ।
शुद्ध संस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम ॥

देसकाल अनुसार भाव निज व्यक्त करन में।
मञ्जु मनोहर भाषा या सम कोउ न जग में॥
ईश्वर मानव प्रेम दोउ इक सग सिखावति।
उज्जल श्यामलधार जुगल यों जोरि मिलावति॥
भेद भाव तजिबे की प्रतिभा जव रमग्नी।
योग गहत तिनसों तव सुन्दर बहत त्रिवेनी॥
करी जाय यदि जासु परीक्षा सविधि यथारथ।
याही में सव जग कौ स्वारथ ग्रह परमारथ॥
वरनन फो करिसकत भला तिह भाषा कोटी।
मचलि मचलि जामें माँगे हरि माखन रोटी॥
जाकौसो रस ग्रवगाहत जाही में ग्रावै।
कैसोहू गुनवान थाह जाकी नहिं पावै॥
रहयो यही ग्रवसेस एक ग्रारज जीवनधन।
चिन्तनीय यह विषय तुमनु सों सब सज्जन गन॥
वङ्ग ग्रौर महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस में।
ग्रटक कटक पर्य्यन्त कहिय भारत ग्रसेस में॥
एक राष्ट्रभाषा की त्रुटि जो पूरत ग्राई।
इतने दिन सों करति रही तुम्हरी सियकाई॥
सत समरथ कवियनु की कविता प्रमान जामें।
निरखहु नयन उघारि कहा लों सबनु गिनामें॥
इकदिन जो माधुर्य्य कान्तिमय सुखद सुहाई।
मञ्जु मनोरम मूरति जाकी जग जियभाई॥
देखत तुम निश्चिन्त जात ताके ग्रब प्राना।
ग्रभागिनी शोकार्त्त कहहु को तासु समाना॥

लिखन रह्यो इक ओर तासु पढ़िबोहू त्याग्यो ।
मातासो मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यो ॥
शुभ राष्ट्रीय विचारनु को जब पुण्यप्रचारा ।
कैसो याके संग कियो तुमने उपकारा !!!
रह्यो बनावन याहि राष्ट्रभाषा इकओरी ।
उलटो जासु अनिष्ट करन लागे बरजोरी ॥
या जीवन संग्राम माहिं यावत सहाय सब ।
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अब !
क्यों जासो मन फिरयो कृपा करि कछुक जतावैा ।
वृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावैा ॥
जिनके तुम बस परे अहहि ते सकल विमाता ।
ब्रजभाषा हीं शुद्ध संस्कृत साची माता ॥
मातृहृदय को प्रेम मातृहृदही में आवै ।
ताको पावन स्वाद विमाता कबहुँ न पावै ॥
टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेमसो ।
भरि भरि देखत नैन तुमहिं जो नित्यनेम सों ॥
तिहदिसि चितवत नाहिं कहा की नीति तिहारी ।
पुण्यप्रकृति तजि प्रतिकृति ताकी लगति पियारी ॥
काज न जब कछु करत सिथिलता तन में व्यापत ।
यही सोचि जननी ब्रजभाषा निसिदिन कांपत ॥
सुत सेवा हित तासु रुचिर रुचि रहत सदा ही ।
जनमें पूतकुपूत कुमाता माता नाहीं ! !
जाय कहाँ अब, बनहि तुम्हें यहि पाले पोसे ।
याको बल याको जीवन बस आप भरोसे ॥
निरालम्ब यह अम्ब याहि अवलम्बनु दीजै ।
तनसो मनसो धनसो याकी उन्नति कीजै ॥

यही रहति जननी की केवल नित अभिलाषा।
सफल होहि तुव सबै उच्च उन्नत प्रिय आशा॥
सकल और अभ्युदय सूर्य्य की किरनि प्रकासैं।
नसहि अविद्या रैनि ज्ञान नय कमल विकासैं॥
जागृति त्रिविधि बयारि बसन्ती नित सरसावैं।
निरमल पर उपकार हृदय मधि लहरि सुहावैं॥
मोहैं सुजन रसाल प्रेम मजरि चहुँ छाये।
निजभाषा रुचि लता अङ्क लहि परम सुहाये॥
कवि कोयल सत्काव्य कूक अपनी उच्चारैं।
गुनिगुन गाहक रसिक भ्रमर मञ्जुल गुंजारैं॥
जगमगाय जातीय प्रेम सुधरै चरित्रबल।
सब के हों आदर्श उच्च उत्तम अरु उज्ज्वल॥
विद्या विनय विवेक प्रकृति छवि मनहि लुभावै।
दुख को हो अब अन्त देश भारत सुख पावै॥
परब्रह्म परमातम घट घट अन्तरजामी।
पुरहि यह अभिलाष सत्यनारायण स्वामी॥

इसी सम्मेलन में आपने पैसा-फंड की अपील और सम्मेलन पचपदी नामक कवितायें भी पढीं थीं। इन्हें हमने परिशिष्ट में दिया है।

•

फीरोजाबाद के आगरा-प्रान्तीय सम्मेलन पर

फीरोजाबाद तथा उसके निवासियों पर सत्यनारायणजी क विशेष कृपा थी। इसलिये जब फीरोजाबाद में आगरा-प्रान्तीय

म्मेलन हुआ तो सत्यनारायणजी ही उसकी स्वागत कारिए
मिति के सभापति बनाये गये। श्रीमान श्रीधर पाठकजी इ
ान्तीय-सम्मेलन के प्रधान थे। इन दोनों कवियों का सम्मेल
ास्तव में मणि-काञ्चन सयोग की तरह था। इसी कार
म्मेलन का सम्पूर्ण कार्य बडी सफलता से समाप्त हुआ। हिन्
के अनेक विद्वान और लेखक इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे
त्यनारायणजी की स्वागत-वक्तृता वैसी ही योग्यता पूर्ण थ
ैसा कि पाठकजी का सारगर्भित भाषण।

सत्यनारायणजी ने अपने भाषणके प्रारम्भ में श्रीमान पाठकज
के विषय में निम्नलिखित पद्य पढा था।

परम पुण्यमय विश्व प्रेम के जो रँगराँचे।
उर उदार अति सदय हृदय सहृदय जग साँचे॥
मञ्जु मधुर मृदु सरस सुगम सुनि सुठि जिन बानी।
नस नस नव जातीय ज्योति विद्युत लहरानी॥
श्रीधर भाषा साहित्य के जे अस कविकोविद प्रवर।
सत सादर नित सबको नवत सीस नाय जुग जोरि कर॥

भाषण के अन्त में श्रीमान पाठकजी से सभापति का आस
ग्रहण करने के लिये अपने निम्नलिखित शब्दों में प्रार्थना की थी —

प्रकृति मधुर प्रिय परम विदित नय नागरि नागर।
भव्य भारती विमल विभाकृत विशद उजागर॥

पुण्य राष्ट्रभाषा-उन्नतिकुल अग्रगण्य वर।
अखिल आगरा रत्न समुज्ज्वल नितनय श्रीधर॥
श्री श्रीधर पाठक करि कृपा मञ्जुल मुद मगल करन।
यहि सभापती आसन सुभग करहि सुशोभित मन हरन॥

सम्मेलन समाप्त होने पर सत्यनारायणजी ने श्रीरवीन्द्रनाथ के एक सुप्रसिद्ध पद्य का अनुवाद सुनाकर उपस्थित सज्जनों को मन्त्र-मुग्धसा कर दिया था। वह यह था —

भगवन ! मेरा देश जगाना।
स्वतन्त्रता के उसी स्वर्ग में, जहाँ क्लेश नही पाना।
रहे जहाँ मनको निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना।
मिले बिना कुछ भेद भावके सबको ज्ञान खजाना॥
सग घरेलू दीवारों का बुना न ताना बाना।
इसीलिये बच गया जहाँ का पृथक् पृथक् हो जाना॥
सदा सत्य की गहराई से शब्दमात्र का आना।
पूरणता की ओर यत्न का जहाँ भुजा फैलाना॥
विमल विवेक सुलभ स्रोते का जो रसपूर्ण सुहाना॥
रूढि भयानक मरुस्थली में जहाँ नहीं छिप जाना॥
जहा उदारशील भावों का भावे नित अपनाना।
सच्चे कर्मयोग में प्रतिपल सीखे चित्त लगाना॥

सत्यनारायणजी के इस मधुर गीत की ध्वनि अब भी उन लोगों को नहीं भूली जिन्होने इसे फीरोजाबाद में सुना था !

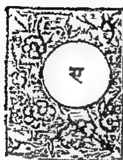
अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इन्दोर

सम्मेलन के इस अधिवेशन में भी सत्यनारायणजी सम्मिलित हुए थे। इसका विवरण हम सत्यनारायणजी के अन्तिम दिवस नामक अध्याय में करेंगे।

इस अध्याय से पाठकों को पता लग गया होगा कि सत्यनारायण जी का जीवन कितना साहित्यमय था। सहृदयता और सरलता के साथ-साथ जिस वस्तु ने सत्यनारायण के व्यक्तित्व को आकर्षक बना दिया था, वह था उनका साहित्यिक जीवन। श्रीयुत गोकुलानन्द-प्रसाद वर्म्मा ने "साहित्यिक रुचि और जीवन" नामक एक लेख में लिखा था—"आँखें उठाइये, अब भी अपने हिन्दी संसार में आप बहुतेरे सज्जनों को देखेंगे जो सच्चे साहित्यसेवी हैं, जिनका जीवन सच्चा साहित्यिक जीवन है। × × × वह अधखिला फूल आगरा निवासी कविवर सत्यनारायण अब इस संसार में नहीं, पर जिन लोगों ने साहित्य सम्मेलन के लखनऊ के अधिवेशन या दूसरे अधिवेशनों में उसको देखा था, उसके भाषा प्रेम को मालूम किया था, उसके हृदय को अपने हृदय में स्थान दिया था, वही कहेगा कि सत्यनारायण अपनी सादी आकृति में भी कैसा मनोहर व्यक्ति था!

पाठकों ने सत्यनारायणजी का साहित्यिक जीवन का वृत्तान्त पढ़ ही लिया। अब उनकी "साहित्यिक मृत्यु' अर्थात् विवाह और गृह-जीवन का वर्णन अगले अध्याय में पढ़िये।

विवाह



एक बार आगरा निवासी गोस्वामी प० व्रजनाथ शर्म्मा और प० हरिप्रपन्नाचार्य्यजी हरद्वार गये हुए थे। वहाँ से लौटते समय उन्होंने सोचा कि चलो सहारनपुर की 'मेरी शारदा-सदन' नामक संस्था को भी देखते चलें। समाचार पत्रो में इस संस्था का नाम उपर्युक्त सज्जनों ने कई बार पढा था। संस्था के अधिष्ठाता पडित मुकुन्दरामजी ने इन महाशयों को अपनी संस्था का निरीक्षण कराया। अधिष्ठाताजी ने एक लडकी से हारमोनियम पर एक भजन भी गवाया। गोस्वामीजी के पास जेब में सत्यनारायणजी की कोई कविता पडी हुई थी, उन्होंने वह उस लडकी को गाने के लिये दी। उसने उस कविता को हारमोनियम पर गाकर सुनाया। तत्पश्चात् निरीक्षकगण सन्तुष्ट होकर संस्था से बाहिर चले आये। बाहर आने पर जब ये लोग चलने के लिए उद्यत थे, प० मुकुन्दराम जी दौडे हुए आये और बोले—"जिस कन्या की परीक्षा आपने ली थी। उसके लिये वर की आवश्यकता है। यदि आपकी तालाश में कोई वर हो तो बतलाइये। गोस्वामी व्रजनाथ शर्मा ने मजाक में यों कह दिया—"हमारी तालाश में एक वर है।"मुकुन्दरामजी ने पूछा—"कौन? गोस्वामीजी ने कहा—"सत्यनारायण कविरत्न", मुकुन्द

मजी ने कहा—"क्या वे ही,जिनकी कवितायें पत्रों में निकला करती ? गोस्वामी ने उत्तर दिया—"हाँ वे ही। मुकुन्दरामजी ने प्रार्थना कि सत्यनारायणजी को आप सम्बन्ध के लिये तैयार करें। स प्रकार मजाक मजाक में ही उस दुःखान्त नाटक का सूत्रपात आ जिसका अन्तिम पर्दा आगे चलकर १६ अप्रैल सन् १९१८ को रा!

गोस्वामी व्रजनाथजी शर्मा की मारफत पत्र व्यवहार कुछ दिन क होता रहा। सर्वसाधारण को यह खबर "मौजी" ने ११ जुलाई न् १९१६ के 'भारतमित्र" द्वारा निम्नलिखित शब्दों में सुनाई थी—

"सहारनपुर की (मेरी) सम्राज्ञी शारदा-सदन की पोडशी न्दरी के साथ सीधे साधे सरल सुकवि सत्यनारायण का समीचीन सम्बन्ध शीघ्र ही सुसम्पन्न होने का शुभ समाचार सुरसिक ाहित्य सेवियों को सदा सन्तुष्ट रखेगा इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि ह सदानन्द सन्दोह के समागम का सच्चा साधन है।"

इस समाचार को पढकर सत्यनारायणजी के अनेक मित्रों ने नको पत्र भेजकर इस सम्बन्ध को न करने का आदेश किया। सरस्वती सदन इन्दौर के श्रीयुत द्वारिकाप्रसादजी "सेवक" ने एक ोरदार पत्र इसी आशय का पंडितजी को भेजा, जिसमें यही आग्रह किया था कि इस सम्बन्ध को आप कदापि न करें। उधर विवाह के लिये पत्र-व्यवहार होता रहा।

२२ मई सन् १९१५ के पत्र में श्रीयुत मुकुन्दरामजीने गोस्वामी जी को लिखा था—

मान्यवर महाशयजी,

नमस्कार

उपरोक्त आश्रम अब सहारनपुर से उठकर ज्वालापुर आ गया है। यहाँ भक्तराज सेठ बलदेवसिंहजी (देहरादून) ने भूमि तथा धन इमारत के लिए दिया है। यहाँ इस संस्था की अधिक उन्नति होगी, ऐसी आशा है। आपका पत्र तथा दोनों पुस्तक प्राप्त हुए थे। हम आपके अनुग्रहीत हैं।

परिवार की स्त्रियाँ देखना चाहती हैं। क्या उक्त पंडितजी किसी प्रकार ज्वालापुर (हरिद्वार) पधार सकते हैं? सब बातें भी तय हो सकेंगी। देखना भी सर्व प्रकार ठीक हो सकेगा। मैं तो स्वयं भी वहाँ ही आकर देख सकता हूँ। बूझकर सूचना दें तो बड़ी कृपा हो। आने जाने का व्यय हम दे देवेंगे।

पं० पद्मसिंहजी—सम्पादक "भारतोदय"—भी ज्वालापुर में उक्त पंडितजी को जानते हैं। साक्षात्कार उनसे भी हो जावेगा। कृपया वापसी डाक उत्तर दें।

भवदीय—
मुकुन्दराम शर्मा
अधिष्ठाता
संस्कृत कन्या विद्यालय।

इसके बीस बाईस रोज बाद श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने जो पत्र सत्यनारायणजी के नाम भेजा था उसकी ज्यों की त्यों नकल यहाँ जाती है।

ॐ

स्थान ज्वालापुर (हरिद्वार)

जिला– सहारनपुर

तारीख १५ जून १९१५ ई०

तिथि ज्येष्ठ सुदी ३ भौमवार सवत् १९७२ ।

मान्यवर महोदय श्रीयुत पण्डित सत्यनारायण जी शर्म्मन्

नमस्ते

आप के विवाह सम्बन्ध में मैंने अब तक पत्र व्यवहार प० वृजनाथ जी गोस्वामी शीतलागली, आगरा के साथ किया था । अब आगे आप से ही सब पत्र व्यवहार करना उचित समझता हूँ । आप स्वय ही पत्र व्यवहार कीजिये ।

आप विवाह कब तक कर सकते हैं ? हमने आपके तथा कन्या के नाम से सुझाया था तो ता० ३ जौलाई १९१५ तदनुसार मिति असाढबदी ७ या ८ निकलती है। आप इस तिथि पर कर सकते हैं या नहीं ? और सर्व प्रकार की तैयारी वस्त्र आभूषण आदि की कर सकेंगे या नहीं ?

हम विवाह में अधिक व्यय करने में असमर्थ हैं, क्योंकि ४ वर्ष से हमने स्त्री शिक्षा-व्रत धारण किया हुआ है और विना कुछ लिये हुए ही इतना बडा कठिन काम सिर पर उठा रक्खा है। हम एक साधारण आदमी और एक निर्धन ब्राह्मण हैं। इस सस्था से पूर्व भी अनेक नौकरी करते हुए प्राय ब्राह्मणत्व ही का ध्यान रक्खा

है और धन संग्रह नहीं किया। हाँ, हम से जो कुछ बना है, अपने परिवार तथा अन्य मित्रों की शिक्षा में सर्वदा तत्पर रहे हैं और मेरी स्त्री ने भी स्त्री शिक्षाव्रत के लिये भिक्षकों की भाँति जीवन कर रक्खा है जो हमारे परस्पर के व्यवहार द्वारा आप जान सकेंगे। हमने आपकी वृत्ति अपने अनुकूल देखकर ही आप को कन्या के योग्य पसन्द किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी प्रिय पुत्री सर्व प्रकार योग्य है—सुन्दर, हृष्ट पुष्ट, गृह-कार्य्यदक्षा, विदुषी और सर्व कार्य्यों में प्रवीण है। इस प्रकार की ब्राह्मण कन्या बहुत ही कम निकलेंगी जिसने पबलिक में भाषण देहली, लखनऊ, मसूरी आदि में हुए हैं और जो इस आश्रम के कार्य्यार्थ भ्रमण में प्राय भाषण करती रही है और लेख भी अच्छे लिख लेती है। हार्मोनियम बजाना गाना भी जानती है। गोस्वामीजी परीक्षा कर भी चुके हैं उनसे समाचार मिले ही होंगे। आयु भी १६ वर्ष की है। सर्व प्रकार योग्य है। उसको योग्य बनाने में ही हमने अपना तन मन धन अब तक लगाया है। इसलिये धन हीन हैं। हमसे धन की आशा तो रखना व्यर्थ होगा। हाँ, हमारे व्यवहार से आप सर्वदा प्रसन्न रहेंगे यह आशा है। हां, हमने आपके स्वास्थ्य सम्बन्धी सब बातें जो हमें अन्वेषण द्वारा प्रकट हुई थीं अपनी प्रिय पुत्री को जता दी है तथा आपके सम्बन्ध की अन्य बातें भी प्रकट कर दी हैं। वह भी आप के गुणों को अपने अनुकूल समझ कर अन्य कई वरों में से आपको ही पसन्द करती है। हम भी इस लिये उससे सहमत हैं।

कन्या का नाम सावित्री देवी है और वह शारीरिक दशा के प्रकट करने पर प्राचीन समय की महाभारतवाली "सावित्री सत्यवान्" की तरह अपने भाग्य को ईश्वर अधीन करती है। हम भी उसके इस दृढ़ सच्चे विश्वास से अधिक प्रसन्न हुए हैं। और इसलिये ही हमारे परिवार के इतर सज्जनों तथा मित्रों ने भी आपके साथ सम्बन्ध को सर्वथा अनुकूल ही समझ लिया है। आपकी सम्मति और विचार क्या है? आपके उत्तर आने पर हम ५) पाँच रुपये वाग्दान (सगाई) की रीति के तौर पर मनीआर्डर द्वारा भेज देवेंगे। वापसी डाक उत्तर दीजिये।

शीघ्र से शीघ्र आप विवाह कर सकेंगे? ज्वालापुर-आगरे में बड़ा अन्तर है और मार्ग व्यय अधिक होगा। इसलिए सोच विचार कर ही बारात में लाना उचित रहेगा। न्यून से न्यून कितने सज्जनों को लाओगे? हाँ सब सज्जन योग्य पुरुषों को आप स्वय विचार कर के ला सकते हैं। मित्रवर प० पद्मसिंहजी की भी यही सम्मति है।

मैं आपके ग्राम में भी गया था। अब तक आप एकाकी थे। गृहस्थी होने की दशा में मकानादि सुरक्षित और आराम का होना चाहिए। आपको निज मकान का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। आप स्वयम् विचारशील हैं, मैं अधिक क्या लिखूँ?

बारात में आनेवाली तादाद को पूर्व लिखने से आतिथ्यादि का प्रबन्ध समुचित किया जा सकेगा। इसलिये पूर्व सूचना देवें।

हमारे द्वारा यहाँ क्या प्रबन्ध (बाजे आदि का) कराना उचित समझते हैं, यह भी लिख भेजें।

विवाह संस्कार कराने को प० घनश्यामजी के भ्राता प० भीमसेनजी आगरा के तथा पर्वतीय विद्वान् प० यज्ञेश्वरजी यहां ही हैं। हम बुला लेंगे।

वापसी डाक उत्तर देवें।

भवदीय—
मुकुन्दराम शर्म्मा गौड, पाराशर।
अधिष्ठाता
कन्या संस्कृत विद्यालय।
P O Jwalapur, Dt Saharanpur
U, R R

इस पत्र के उत्तर में सत्यनारायणजी ने एक कार्ड डाला। तत्पश्चात् एक चिट्ठी ओर भी भेजी। उस चिट्ठी में आपने लिखा था —

"आपके दीर्घकाय कृपा पत्र के उत्तर में एक कार्ड डाला जा चुका है। जिस प्रेमपूर्ण ओजस्विनी भाषा में आपने वह पत्र लिखा था उसे पढकर मैं क्या,कोई भी सहृदय पुरुष आपकी आज्ञा उल्लघन नहीं कर सकता,फिर भी प्रस्तावित विषय पर पुनर्विचार करना कोई बुराई नहीं है। सहसा किसी कार्य को नहीं करना चाहिये। इसलिये निम्नलिखित कुछ बातों पर ध्यान देने की कृपा करने के लिये मैं आप से सानुरोध प्रार्थना करता हूँ। आशा है,आप ऐसा करके कृतकृत्य करेंगे। जिन बातों पर विचार करना है वे सब की सब यथार्थ हैं,उन में लेशमात्र को भी अतिशयोक्ति की मात्रा नहीं है।

(१) मेरा स्वास्थ्य लगभग ३ साल से बिगड़ता चला आ रहा है। अब भी अच्छा नहीं है। बरसात में रोग का दौरा होना सम्भव है जिसकी मैं भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

(२) स्वतंत्र जीवन ही मेरा जीवन है। नौकरी चाकरी कभी की नहीं और ऐसी दशा में श्रम करना * × × ×।"

ता० ३१ जुलाई १९१० को सत्यनारायणजी ने किसी मित्र को यह पत्र लिखा था —

धांधूपुर,

३१ जुलाई १९१५

प्रियवर,

कृपा पत्र यथा समय मिला। सामयिक सूचना के लिये धन्यवाद विशद प्रकार से प० बद्रीनाथ तथा लक्ष्मीधरजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा है। हाँ, मुझे देखकर मुसकराये अवश्य हैं। आपको किस प्रकार भ्रम आगया कि मैं "बेचेन" हूं। प्रथम तो मेरा स्वास्थ्य ही अच्छा नहीं है। आप से क्या यह छिपा है? न मेरी ओर से अभी तक कोई प्रस्ताव किया गया है। अपनी दशा जैसी है वैसी ही लिखदी गई है। जैसे आपने यह कृपा की, वैसे ही उस पत्रोल्लिखित "गृहलक्ष्मी" की सद्गुणावली, अवकाशानुसार, विस्तारपूर्वक लिखिये।

ऐसा सम्बन्ध करने के पूर्व यथासम्भव मैं आप की सेवा में आऊँगा केवल स्वास्थ्य परीक्षा के लिये। तत्पश्चात् कोई काम होगा—इस ओर से आप निश्चिन्त रहें। यदि दैव सयोग से किसी

* इस पत्र का शेष अंश नहीं मिल सका। —लेखक

विकट समस्या में फसना ही पडा तो आप को तार द्वारा अवश्य सूचना दी जायगी, विश्वास रखिये।

अब मैं कुछ कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक स्वांस ले उठा हूँ। अब आपकी सेवा में तुकबन्दी भेजा करूँगा।

आपका —

सत्यनारायण

तारीख ६ अक्टूबर सन् १६१० को श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने एक पत्र फिर सत्यनारायणजी के नाम भेजा, जिसमें आपने लिखा था —

"श्रीयुत मान्यवर महोदयजी

मैंने आपके पास एक पत्र विवाह के सम्बन्ध में ता० १७ सितम्बर १६१० को डाला था। अब तक प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उत्तर नहीं दिया। कृपया वापसी डाक उत्तर प्रदान करें।

प० ब्रजनाथजी की भेजी हुई पत्रिका "स्त्री-सुधार" नामी ट्रैक्ट की समालोचनावाली तो पहुँच चुकी है।

विवाह के सम्बन्ध में अब आपके क्या विचार रहे? स्वास्थ्य कैसा प्रम णित हुआ? आपके कारण हमने ओर से अभी तक बात भी नहीं की है।

वापसी डाक उत्तर देने की कृपा करें। हम विजया दशमी दशहरा पर वाग्दान (सगाई) की रसम अदा करना चाहते हैं। सगाई भेजी जावेगी।

"मान्यवर महोदयजी,

नमस्कार

आपका १३ । १० । १५ का पत्र प्राप्त हुआ । उत्तर में निवेदन है कि हम आपकी इस कृपा के लिये अत्यन्त अनुग्रहीत हैं जो आपने हमारे तथा हमारी संस्था के लिये दर्शाई है।

हमने आपके भरोसे पर अभी तक दूसरे किसी वर की तालाश नहीं की थी – और कन्या बडी समझदार है। आपके गुणों पर मुग्ध होकर उसने आपके साथ ही पत्र-व्यवहार कराया था। अब आपने स्पष्ट उत्तर दे दिया है। हम आपकी सुजनता की प्रशंसा करते हैं, परन्तु साथ में यह भी निवेदन करते हैं कि क्या वास्तव में स्वास्थ्य-दशा वर्षा ऋतु में गिर गई है या पूर्ववत् ही है। साधारण ज्वर की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। और यदि आप किसी अन्य कारणों से नहीं करना चाहते हों तो दूसरी बात है। हमें भी सूचित करना चाहिये–हमें भूषण वस्त्रादि की आवश्यकता न समझें। हम तो आपकी सुजनता से प्रसन्न हैं। इलाज हम आपका यहाँ करा देवेंगे। मेरे कई मित्र अच्छे अनुभवी वैद्य हैं। और यदि किसी प्रकार भी आप विवाह करना चाहते ही नहीं तो हमें कोई और वर बतलाइये। आगरा कालिज में कोई पढता हो अथवा आपकी दृष्टि में अन्य कोई हो, या अपने मित्रों से पता चले तो हमें उत्तर देने की कृपा करें।

अपने विषय में भी उत्तर देवें कि स्वास्थ्य-दशा के अतिरिक्त और कोई बात तो बाधक नहीं है।

भवदीय—मुकुन्दराम शर्म्मा

२२ अक्टूबर को श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने निम्नलिखत तार गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा के नाम भेजा—

"Send satyanarayan one day expenses will pay
Mukundram"

अर्थात् "सत्यनारायण को एक दिन के लिये भेजो। खर्चा हम देंगे—मुकुन्दराम।

इस तार के साथ ही एक तार उन्होंने सत्यनारायणजी को भी भेजा और साथ ही निम्नलिखित पत्र भी।

२२ अक्टूबर १९१५

मान्यवर महोदयजी!

नमस्कार

मैंने श्रीमानों के पास एक पत्र भेजा था, पहुँचा होगा। उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज आपके नाम तथा गोस्वामी ब्रजनाथ जी के नाम तार भी दिया है कि और एक दिन के वास्ते हम पर कृपा करके यहाँ पधारें तो बड़ी भारी कृपा हो।

आपने किस कारण से विवाह का निषेध किया है? हम स्वयं वास्तविक कारण जानना चाहते हैं। आपका स्वास्थ्य अच्छा है। हमें ऐसा प्रतीत हुआ है कि आपने किन्हीं अन्य कारणों से निषेध किया है। अत हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि मार्ग व्ययादि हम देवेंगे। एक बार आप हमारे यहाँ आकर दर्शन देने की कृपा करें।

वार की स्त्रियॉं आदि आपको देखना चाहती है। हम आपके
प्र ही मानसिक सकल्प देर से कर चुके है,। कन्या भी आपके
ों से मुग्ध होकर आपको ही अधिक पसन्द करती है। कृपया आप
दिन को अवश्य पधारें। आने की सूचना तार द्वारा दे देवें।

भवदीय मुकुन्दराम शर्म्मा

इस पत्र के पाने के बाद सत्यनारायणजी ज्वालापुर गये। ज्वालापुर से लौटने के बाद सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित २८। १०। १५ को प० पद्मसिंहजी शर्म्मा के नाम भेजा था।

आगरा
-८। १०। १५

प्र प्रिय पडितजी,

पद

सुधि रहि रहि आवत तव सँग को रग रलियाँ।
नव नयनाभिराम श्यामल वपु शैल,गग,तट गलियाँ॥
रस बतरानि विचारत बिकसत रोम-रोम की कलियाँ।
सत गरीब को फेरि देउ मन भरी न ये छलबलियाँ॥

आ गया—शरीर आगया! मन वहाँ ही आपकी सेवा में छोड
या हूँ। आपके दरबार में यहाँ का कोई प्रतिनिधि चाहिये न?
कुछ इजहार लिये जाने पर मुकदमा फिर मुलतवी हो गया।
ाँ अलीगढ की ट्रेन से लगभग १॥ या २ बजे आ पहुँचा।

गाडी में बैठा जब मैं आ रहा था तब झंझट में फँसे हुए मैंने ूर से देखा कि प० रामगोपालजी महाविद्यालय के फाटक पर ाडी की ओर देख रहे थे। मैं नमस्कार करने जब तक आया तब ाक गाडी दूर निकल आई। उनकी निगाह ठीक सीध में होने से ामस्कार कार्य की सफलता न हुई। कृपाकर मेरी ओर उनसे क्षमा ार्थना माँग लीजे।

मास्टर साहब को ब्राह्मी पत्र सब पहुँचा दिये। उनसे निवेदन ारिये कि जरा इधर भी कृपा-दृष्टि रक्खे।

पूज्य प० शालिग्रामजी से नमस्कार।

श्री नारायणसिंहजी, सुन्दरलालजी तथा अन्य प्रेमी विद्यार्थियों ो नमस्कार।

आपका—
सत्यनारायण

३ नवम्बर को मुकुन्दरामजी ने एक पत्र गोस्वामी ब्रजनाथजी शर्मा के नाम भेजा। उसमें आपने लिखा था—

"हम मार्गशीर्ष से आगे विवाह के लिये कदापि नहीं ठहर सकते। यदि प० सत्यनारायणजी किसी प्रकार भी उस समय तक नहीं कर सकते तो हम विवश हैं। हम अन्यत्र प्रबन्ध कर रहे हैं। आप उनसे बूझकर शीघ्र उत्तर दें।"

फिर दूसरे पत्र में मुकुन्दरामजी ने गोस्वामीजी को लिखा —

"हमने आपसे बहुत आग्रह किया था कि हम बहुत शीघ्र ह करना चाहते हैं। यदि शीघ्र विवाह करना स्वीकार तो वागदान का मनीआर्डर लेवें अन्यथा वापिस कर दें। आपका उत्तर आ गया कि नहीं कर सकते, तब हमने अन्यत्र व्यवहार किया था और सब बातचीत पक्की कर चुके थे। शीघ्र विवाह की तैयारी भी हो रही थी। इतने ही में फिर आपके पत्र पर तथा प० पद्मसिंहजी पर आये कि माघ में अवश्य विवाह लेवेंगे और वागदान का मनीआर्डर भी लेने की सूचना मिली फिर वहाँ का पत्र व्यवहार बन्द करके प० सत्यनारायणजी के य ही प० पद्मसिंहजी तथा आपके आग्रह पर सम्बन्ध स्वीकार लिया है। परन्तु इतनी बात अवश्य है कि हम देर तक ठहर सी प्रकार भी नहीं सकेंगे। हम विवाह की तिथि निश्चय करा के त्र ही भेजनेवाले हैं। यथा सम्भव जो भी तिथि नियत हो सकेगी, जावेगी। आप सब तैयारी करें। हम बड़ी धूमधाम नहीं चाहते। धारण तौर पर कार्य्य करें। परन्तु पौष के अन्त अथवा माघ के रम्भ में विवाह करना अवश्य ही पड़ेगा, यह पूरा पूरा प्रबन्ध लें। इसी शर्त पर वागदान को भेजा भी गया था। हमारी यही र्त पत्रों में भी थी। हमने शीघ्र ही विवाह करनेवाले सम्बन्ध आपकी स्वीकारी पर बन्द किया है।"

इसके ८-५ दिन बाद ही चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक के म भी मुकुन्दरामजी ने एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने लिखा था -

"यदि वे (सत्यनारायण) मार्गशीर्ष में विवाह करने के लिये तैयार हो सकें तो वागदानवाला मनीआर्डर ले लेवें अन्यथा हमें उनकी आशा छोड़कर कोई दूसरा वर ही निश्चय करना पड़ेगा। हम मार्गशीर्ष से आगे किसी प्रकार भी विवाह को हटाने को तैयार नहीं हैं।"

इन पत्रों के उत्तर में सत्यनारायणजी ने ६।११।१५ को निम्नलिखित पत्र भेजा था—

भगवन्,

गोस्वामी ब्रजनाथजी द्वारा कृपा पत्र मिला। यदि उसे एक अंश में अल्टीमेटम कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सत्य जानिये, आपके सद्व्यवहार से विमोहित होकर मैं आपकी सेवा में आत्मसमर्पण कर चुका हूँ, किन्तु जब तक पूज्य प० यज्ञेश्वरजी आदि वैद्य प्रवर एक मत होकर मेरे स्वास्थ्य के लिये अपनी पुष्ट सन्तोषजनक सम्मति न देंगे तब तक इस सम्बन्ध के विषय में अपना स्वीकारात्मक उत्तर अथवा कार्य स्थगित करने के लिये विवश हूँ। माना कि आपके तथा देवी के हृदय में अपार प्रेम है, परन्तु मैं जो आगा पीछा सोचने में कुछ विलम्ब लगा रहा हूँ क्या वह सत्परिणाम-कामना का द्योतक नहीं है?

'सहसा विदधीत न क्रियाम्' *

---

*यह वाक्य सत्यनारायणजी ने लिखकर फिर काट दिया था।

यदि किसी कारण विशेष से आपको अपने देर के मानसिक सकल्प में परिवर्तन करने की शीघ्रता हुई है, जैसा कि होना स्वाभाविक भी है,तो तद्विषय में इस शरीर की आन्तरिक कामना है।

"विधाता भद्र ते वितरतु मनोज्ञाय विधये,

विधेयासुर्देवा परमरमणीया परिणतिम् ।"

अपने एक सेवक की तरह मुझे भी याद रखिये और सर्वदा कृपा बनाये रखिये।

आपका—

सत्यनारायण

ता० २१ नवम्बर को श्रीमुकुन्दरामजी ने एक पत्र फिर सत्यनारायणजी को भेजा, जिसमें लिखा था —

"हमने अन्य वर तलाश करने का विचार कर लिया है और एक अच्छा वर संस्कृत का विद्वान मिल भी गया है जो इसी अगहन में विवाह भी कर सकेगा। इसलिये आप को सूचनार्थ अब लिखा जाता है कि हम विवश होकर दूसरी जगह करते हैं। हमारा इस में कोई दोष नहीं।

हमने ६ या ७ मास आप के कथनानुसार प्रतीक्षा भी की थी। जब आप सर्वथा सहमत नहीं हुए तब हम अन्यत्र करते हैं। × × × परन्तु हमारा प्रेम आप से पूर्ववत् रहेगा। हमें भूल मत जाना।"

इस प्रकार यह सम्बन्ध लगभग टूट ही गया था कि दैवयोग से उसमें उपन्यास जैसा परिवर्तन हुआ। ता० २६।११।१५ को महाविद्यालय ज्वालापुर से पठित पद्मसिंहजी ने निम्नलिखित पत्र गोस्वामीजी के नाम भेजा।

"श्री गोस्वामीजी महाराज,

प्रणाम,

कृपा-कार्ड आपका मिला। मैं दस बारह दिन से प० मुकुन्दरामजी से नहीं मिल सका। आज उनसे मिलकर मालूम करूंगा कि उनके इस विचार परिवर्तन का मुख्य कारण क्या है। मैं तो सलाह भर के वर पुरुषों पर श्रीसत्यनारायणजी को "तर्जीह" देता हूँ। जहाँ तक मेरी शक्ति में है, मुकुन्दरामजी को समझाऊँगा। उन्हें कई अनिवार्य कारणों से जल्दी तो बेशक बहुत है। क्या माघ से पूर्व आप वर महोदय को किसी प्रकार भी तैयार नहीं कर सकते? विशेष तैयारी की जरूरत नहीं है। आप पूरा प्रयत्न कीजिये कि माघ से पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न होजाय। मैं मुकुन्दराम को समझाता हूँ।

भवदीय—
पद्मसिंह शर्म्मा

इसके बाद क्या हुआ, उसका पता प० पद्मसिंहजी के २१।१२।१५ के पत्र से लगता है। शर्माजी ने सत्य नारायणजी को लिखा था —

"आशा है, आप इधर आने की तयारी में लगे होंगे। प० मुकुन्दरामजी ने अपने पत्र में तिथि की सूचना आप को दे दी है। तदनुसार यथासमय आप अपने सहचर

१

वर्ग सहित दर्शन देंगे, इसमें तो सन्देह नहीं। श्रीगोस्वामीजी का एक कृपा-कार्ड मिला था। उसके उत्तर में मैं दो प भेज चुका हूँ। आशा है, वे उन्हें मिलेंगे। फिर उन्होंने (जैसा कि आपने पत्र में इच्छा प्रगट की थी) कुछ पूछा नहीं। कोई बात ऐसी हो तो साफ करली जाय। इतना फिर निवेदन है कि किसी बात में भी तकल्लुफ या सकोच की जरा जरूरत नहीं। जिस प्रकार इच्छा हो, पधारिये।

बरात भी 'जस दूल्हा तस सजी बराता" के अनुरूप ही होनी चाहिये—बस इने गिने दस पॉच साहित्य-सेवी × × ×'।

इस पत्र का उत्तर २६।१२।१५ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पद्य में दिया था।

"आई तव पाती।
नहिँ बिसरायो अजहुँ मोहि यह जानि सिरानी छाती॥
बड़े भाग जो इतने दिन में सोचि कछू सुधि लीनी।
दरस पिपासाकुल को आधी जीवन आशा दीनी॥
जो मेरो हँसि मिलो होत भै तासु निरन्तर चेरो।
यस गुनहो गुन निरखत तिह मधि सरल प्रकृति को प्रेरो॥
यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरौ बस कछु नाही।
नित नव विकल रहत याही सो सहृदय बिछुरन माँही।
सदा दास पोषित राम बेयस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो सत्य ग्राम को वासी कहा "तकल्लुफ" जानै॥"

इस कविता की पिछली ६ पंक्तियों में सत्यनारायण ने अपने चरित्र की कुंजी बतला दी है। निर्दोष और प्रेममय सरलता ही

उनके जीवन में सब से अधिक आकर्षक वस्तु थी। अस्तु, अ
कोरे सत्यग्राम के वासी को गृह जंजाल में फँसने का समय आगया
वे कागज के टुकडे पर हिसाब लगाने बैठे —

हँसुली	४०)
पहुँची, कड़े	१००)
बाजू	२०)
१० लच्छे, झांझन	३०)
करधनी, अँगूठी	०५)
लहगा, दुपट्टा, चद्दर	५०)

विवाहोत्सव

७ फर्वरी सन् १९१६ को सत्यनारायणजी का विवाह हुआ।

"तुलसी गाय-बजाय के दियौ काठ में पाँव"

विवाह के अवसर पर सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित वचन दिये थे।

भूखे चने चबाकर भी हम हिन्दी को आराधेंगे।
हिन्दू हिन्द देश का मगल तन मन धन से साधेंगे॥
क्या हिन्दू क्या आर्यसमाजी मुसलमान क्या इसाई।
भेद भाव तज सदा गिनेंगे हम सब को भाई भाई॥

उनका दुख दूर करने में मानेंगे अपना आनन्द।
सदा कहेंगे, जैसा चहिये, सच्ची बातें हम स्वच्छन्द॥
कुरीतियों की मूल काटने हम आवाज उठावेंगे।
शुद्ध रीतियों को सप्रेम हम हृदयासन बैठावेंगे॥

इस प्रकार दो भिन्न भिन्न प्रकृतियों का संसर्ग हुआ। कर्कशता सरलता के गले पड़ी। स्वच्छन्दता ने सहृदयता पर अधिकार जमाया। चंचलता ने सरलता का लाभ उठाया और विलासिता तथा भक्ति का मुकाबला हुआ। उस समय प्रेमपुर धांधूपुर का वायुमंडल अशान्त बनगया और एक करुणोत्पादक ध्वनि हुई –

"भयो क्यों अनचाहत को संग!

अगले अध्याय में इसी ध्वनि का अर्थ किया जायगा।

गृह-जीवन



लीवर क्रोम्वैल ने अपने चित्रकार से कहा था—"Paint me as I am If you leave out the scars and wrinkles, I will not pay you a shilling."

अर्थात् "हमारा चित्र ज्यों का त्यों बनाओ। यदि तुमने चहरे की गूथों और सिकुड़नों को छोड़ दिया तो हम तुम्हें एक शिलिङ्ग भी नहीं देने के।" यही वाक्य प्रत्येक चरित्र लेखक के लिये आदर्श का काम कर सकता है। अपने चरित्र नायक की कमजोरियों को दिखलाना उतना ही आवश्यक है जितना उसके गुणों का वर्णन करना। इसी उद्देश्य से मैंने सत्यनारायणजी के गृह जीवन पर प्रकाश डालने का निश्चय किया है। इसके अतिरिक्त एक बात और है। वह यह कि सत्यनारायणजी की मनुष्यता को सर्वसाधारण के सम्मुख लाने के लिये ही यह जीवनी लिखी गई है। इसलिये यदि मैं इस अध्याय को छोड़ दूँ तो यह जीवनी बिलकुल अधूरी ही रह जायगी। अच्छे चित्र में छाया और प्रकाश दोनों का प्रशंसनीय और यथोचित सम्मिश्रण रहता है। यदि आप छाया भाग को छोड़ दें तो वह चित्र कभी भी असली चित्र नहीं कहा जा सकता। और फिर यदि सत्यनारायणजी के जीवन का यह भाग छोड़ दिया जाय तो

स ˈसाधारण की समझ में उन पद्यों का महत्व कदापि नहीं आ सकता जो उन्होंने अपने गृहजीवन से निराश और दु खी होने के समय लिखे थे।

सत्यनारायणजी का विवाह ७ फरवरी सन् १६१६ को हुआ था। × × फरवरी को सत्यनारायणजी सपत्नीक धाँधूपुर लौटे। उस समय सत्यनारायणजी के हृदय के क्या भाव थे इसकी कल्पना करने की सामर्थ्य हममें भी नहीं है। लेकिन इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि उनके हृदय में यह आशा अवश्य थी कि एक सुशिक्षित पत्नी के ससर्ग से उनका साहित्यमय जीवन और भी अधिक सरस हो जायगा। उस समय "कोरे सत्य ग्राम के वासी" को इस बात का पता नहीं था कि 'शिक्षा' और 'सहृदयता' दो भिन्न भिन्न वस्तुएं हैं। महीने भर के अन्दर ही सत्यनारायणजी को पता लग गया कि शिक्षित मनुष्य जितना हृदय हीन हो सकता है उतना अशिक्षित मनुष्य कदापि नहीं हो सकता।

धाँधूपुर पहुँचने के कुछ ही दिन बाद ही श्रीमती सावित्री देवी जी ने कहना प्रारम्भ किया—"मुझे अपनी सहेली "**आमोदिनी**"* के पास "रतिनगर" पहुँचा दो। सत्यनारायणजी ने बहुत कुछ समझाया लेकिन श्रीमतीजी ने एक न मानी।

---

* असली नामों को न लिखकर हमने इन कल्पित नामों को ही लिखना उचित समझा है। —लेखक।

ता० ७ अप्रैल १९१८ को श्रीमतीजी के नाम "आमोदनी" का निम्नलिखित पत्र आया।

५ अप्रैल १९।८

श्रीमानजी तथा श्रीमती बहिनजी,

नमस्ते,

आपके ४ ता० को आने के कई पत्र मुझको मिले और एक ६ तारीख को आने का पत्र मुझको मिला जिसमें यह लिखा हुआ था कि मैं अ नल तो चार तारीख को जरूर जरूर आऊँगी, नहीं तो ६ ता० को जरूर जरूर आऊँगी। कल चार तारीख को गाडी स्टेशन पर गई। मुरादाबाद से जा दस बजे गाडी आती है वह देखी। फिर ३ साढे तीन बजे जो गाडी आती है वह देखी। २ पैसे का टिकट लेकर प्लेटफार्म पर केशोराम ने हर एक गाडी में पुकारा। लेकिन फिर शाम के वक्त लाचार होकर चला आया।

आपकी बहिन—आमोदिनी

श्रीमती मानिनीजी ने अपने ५।१०।१८ के पत्र में मुझे लिखा था —

"पंडितजी मेरे कहने पर मुझे आमोदिनी के यहाँ पहुँचाने के लिये मुरादाबाद १० मार्च सन् १९१८ को गये थे और मेरे कारण आमोदिनी से भी वह प्रसन्न थे, लेकिन कुछ कारणों से फिर वह उसके व्यवहार से अप्रसन्न हो गये थे। मुझे भेजना भी बन्द कर दिया था।"

श्रीमतीजी ने १० अप्रैल को जगह १० मार्च भूलकर लिख
दिया मालूम होता है। अस्तु पंडितजी दिन रात के कलह से त
आकर श्रीमतीजी को रविन्गर पहुँचा आये।

आमोदिनीजी पर प्रसन्न होकर पंडितजी ने उस समय य
कविता लिखी थी —

कली री अब तू फूल भई।
मन मधुकर यह आश लगाये तोसों प्रेममई॥
विकसत सुभग अंग दल प्रतिपल शिशुता झलक सिरानी।
रह्यो कछू अज्ञात तोहि जो अब ऐसी हठ ठानी॥
चार दिना को लहरि महरि है पुनि रीते के रीते।
ऐसो करहु न जो पछितावौ पाछे अवसर बीते॥
सोचि समझि के कीजे कारज जग स्वारथ को चेरो।
सधे लोक परलोक याहि सों सत्य सिखावन मेरो॥

इस कविता की एक प्रति श्रीमती आमोदिनी और दूसरी श्रीमती
सावित्री देवीजी के नाम भेजी गई थी।

धाँधूपुर पहुँचने के बाद पंडितजी को प्रतीत हुआ कि रविनगर
पहुँचाकर हमने बड़ी भयंकर भूल की। चिट्ठियाँ भेजना शुरू कीं।
जवाब नदारद! २३ अप्रैल १९१६ को श्रीमती आमोदिनी देवी ने
निम्नलिखित पत्र पंडितजी को भेजा।

"श्रीमान मान्यवर पंडितजी

नमस्ते।

आप के ३ पत्र आये। वृत ज्ञात हुआ और पढ़कर चित्त अति प्रसन्न हुआ कि आप कुशलपूर्वक घर पर पहुँच गये। आपका प्रेषित उत्तर रामचरित्र नामक पुस्तक प्राप्त हुआ। आप की इस कृपा के लिये धन्यवाद है। अपराध तो अपराधियों से हुआ करते हैं। आपके पास तो अपराध की हवा भी नहीं निकल सकती है। हम ही अपराधी हैं कि आपके उत्तर में विलम्ब हुआ। क्षमा करें। शेष कुशल है।

आपकी भगिनी
आमोदिनी

पंडितजी ने फिर भी सावित्रीजी के नाम आने के लिये पत्र भेजा। उसके उत्तर में २७ अप्रैल को श्रीमती आमोदिनी ने पंडित जी को लिखा—"आपको किसी प्रकार घबराने की जरूरत नहीं है। ये भी आपका मकान है। और आने की बाबत यह है कि ये आपका मकान है। आप जब चाहे तब आ सकते है। बाकी उनके आने की बात की ये है कि जब को वे आने को लिख देंगी तभी आवेंगी आर आप यहाँ से किसी प्रकार की इन्तजारी न करें।"

२४ मई १९१६ को सत्यनारायणजी को निम्नलिखित तार मिला—

"Don't Come useless cant go

—Sawitri"

अर्थात् "मत आओ। निरर्थक है। नहीं जा सकती।
—सावित्री"

२६ मई को श्रीमतीजी ने पत्र भी भेजा। उसमें लिखा था —

' पंडितजी, आपका पत्र मिला। उसके उत्तर में मैंने तार दिया है। शायद उससे कुछ हाल मालुम कर लिया होगा। अब पत्र भी इस विषय का भेजा जाता है। जब तक खुद मेरी ही इच्छा आने की न हो आपका इसमें परिश्रम करना एक अनधिकार चेष्टा ही समझी जायगी। × × × विशेष बात यही है। अपने आने का विचार छोड़दें।"

इसके पूर्व ५ मई के पत्र में श्रीमती लिख चुकी थीं —

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो बातें आप हम दोनों के ऊपर घटा रहे हैं वे खुद की ही लिखी नहीं, बल्कि ज्वालापुर के पत्र से ही लिखी हुई हैं। और ईश्वर से अनेक बार प्रार्थना है कि वो दुष्ट विघ्नकारी बनकर हमारी यातना को हरे और आपकी जबान मुबारिक हो और आपके लिखने के मुताबिक बातें ही पत्थर की लकीर हों। × × × अगर आप हमारे पिताजी की कृपा से नेत्र-विहीन होगये हैं तो मेरे लिये ईश्वर का न्याय है। × × × विवाह होने से जकड़ी गई हूँ मो मन तो स्वतंत्र है। मुझे भगवान का डर है।"

२७ मई को श्रीमतीजी ने लिखा था —

"आपका दूसरा पत्र मिला। उसका उत्तर श्रामोदिनी से न लिखाकर खुद ही लिखने की तकलीफ उठाती हूँ। मेरे यहाँ पर

रहने में अगर आपकी बदनामी है तो इसका मैं कोई यत्न नहीं कर सकती। × × × ×
मुझे तो इस दुनिया से कूच करना है। परन्तु आप अपना नफा नुकसान सोचकर कोई कार्य्य करें × × ×
× × मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। परन्तु सनातनी इस बात के बहुत पाबन्द हैं—"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी।" आप भी तो उसी शिक्षा के माननेवाले हैं! × × × ×
मेरी इच्छा को कोई नहीं रोक सकता। मैं भी अब अपने को दुनियाँ की कोई दिन की अतिथि समझकर भविष्य के वियोगानल को सहन कर लूँगी, पर आप मुझसे कोई सुख उठाने की चेष्टा न करें, क्योंकि मेरा जन्म आर्य्य-कुल में हुआ है × × ।"

सत्यनारायणजी को गुरुबहन जानकीजी को सावित्री देवी ने लिखा था—"अब मुझे पता पड़ गया है कि ये सब मेरी जान लेने के फिक्र में हैं। यहाँ पर मुझे गर्मी ज्यादः सताती है। अगर मैं यहाँ गर्मियों में रहूँगी तो जरूर-जरूर मर जाऊँगी। तुम्हारे भाई की एक चिट्ठी आई है। उनसे कान खोलकर कह देना कि मेरी तन्दुरुस्ती यहाँ पर अच्छी है। वह गर्मियों में मुझे ले जाने का व्यर्थ कष्ट न उठावें। अगर वो जबरदस्ती करेंगे तो मैं ही जहर खाकर मर जाऊँगी।"

ये सब पत्र सुरक्षित हैं। स्थानाभाव से हम इनको पूरा पूरा उद्धृत करने में असमर्थ हैं। अतएव उनके चुने हुए अंश को यहाँ लिखे देते हैं।

"मेरा जन्म आर्य्य-कुल में हुआ है पर एक माता के पेट से रावण जैसा पापी, विभीषण जैसे धर्मात्मा पैदा हुए थे। मैं आर्य्य माता की पुत्री पापिनी हूँ। तभी तो गृहलक्ष्मी नहीं, पिशाचिनी होकर ही इसका चरितार्थ कर रही हूँ। कालिका पिशाचिनी सावित्री से तुम्हें अपनी जान अवश्य बचानी चाहिये"।

"मेरी इच्छा की लगाम नहीं है। इसको आप पूरा करना चाहते हैं, परन्तु लाभ कुछ भी नहीं"।

'अच्छा है अगर आप प्रेम के दावानल को बुझाने की चेष्टा न करें; क्योंकि मेरे ऊपर आज तक किसी ने ऐसा करने की सलाह नहीं दी है। बस अब अगर बुद्धि से काम लें तो अच्छा, नहीं तो "चिड़िया चुँग गई खेत पछताओ कुछ नहीं होगा"।

एक पर्चे पर लिखा हुआ है —

"अरे दीवार जरा झांक के तुम देख तो लो।
नातवाँ करते हैं दिल थाम के आहें क्यों कर।
दिल वो जिगर खून हो चुके हैं, हवास तक अपने जा चुके हैं—
यही मुहब्बत का होसला है, हजार कोड़े गो खा चुके हैं।"

किसी को भेजे गये एक पत्र में यह सारगर्भित पद्य है—

"इसी उलफत के कूँचे में मजा पीछे-जरर पहले,
लगावे आँख जो कोई करे जाँ का सरफ पहले"।

एक दूसरे पत्र में सत्यनारायण जी को ये पंक्तियाँ लिखी गई थीं—

"यह प्रहार प्रेमोपहार हाँ इसी दिशा में आने दो।
कठपुतली सा हमें विवश करके भरपूर नचाने दो॥

इनका साथी बनो मुझे पर्वाह नहीं है ।

× × ×

भला मिटाये मिट सकती है जब है इतनी चाह मुझे ।

इस विचित्र विचार-प्रवाह को यहीं रोककर हम सत्यनारायणजी का २४ । ७ । १६ का पत्र ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं ।

श्री

धांधूपुर
२४ । ७ । १६

श्रीमती,

यथायोग्य

आपके दो पत्र मिले । उत्तर में निवेदन है कि जैसा मैं लिखता रहा हूँ उसी संकल्प पर दृढ हूँ। विचारे × × × जी ने कभी अनुचित परामर्श नहीं दिया और न मैं घर का वकील होते हुए उनके पास मुकद्दमेबाजी की सलाह लेने गया । अभी तक इसका जिक्र भी नहीं है । यदि आवश्यकता पडी तो आप ही मेरी मुंसिफ हैं, आप ही मेरी जज हैं। दस्त-ब दस्ता असालतन आपके ही हुजूर में फरियाद की अर्जी लेकर हाज़िर हूँगा। आपसे अच्छा और कौन हाकिम मिलेगा जिसके पास जाकर अपना दुख सुनाऊँ? न मैंने आपके पत्रों को ही उन्हें दिखाया है । दिखाने योग्य ही नहीं। और फिर दिखाने का फल ? हाँ, मैंने उन पत्रों को सुरक्षित रख छोड़ा है—आप के पाणिपल्लव का प्रथम प्रसाद है। उसकी जितनी कदर की जाय थोडी। आपकी तरह फाड नहीं डाला है !

यदि मैंने मनसा वाचा-कर्मणा कोई अन्याय आपके साथ किया हो तो उसके लिये मैं बारम्बार क्षमा माँगता हूँ। आपके लिखने के अनुसार जब-जब अकेले × × × जी नहीं—किसी ने भी आप के आने के। विषय में पूछा सबको यही उत्तर दिया गया कि उनसे ही पूछ लो। उदाहरण के लिये कन्या पाठशाला रावतपाडेवाले, जिनकी ओर से आपको पाठशाला निरीक्षण के लिये निमन्त्रण मिला था, बार बार पूछते हैं। उनसे भी यही कहना पड़ा और मेरे पास उपाय ही क्या है? × × × जी अथवा जिस किसी ने आप को जो कुछ लिखा है अपनी ही जिम्मेदारी पर लिखा है। आपके न्याय या अन्याय की परिभाषा अभी तक मेरी समझ में नहीं आई। न जाने आप किसे न्याय कहती हैं और किसे अन्याय। यथासम्भव मैंने तो अब तक कोई भी विरुद्धाचरण नहीं किया है, क्योंकि आपकी मर्जी के अनुसार लाख लाख विरोध होते हुए भी, आपको रविनगर लेगया—आपको वहीं छोड आया। आपने लिखा—गर्मी में नहीं 'आऊँगी'। अच्छा साहब जैसी मर्जी! आपने तार दिया, पत्र लिखे कि यहाँ मत आओ। सो अभी तक आपको मुँह नहीं दिखलाया है! फिर आपका आर्डर आया कि यह भी मत पूछो कि "कब आओगी"। उसके अनुसार, चाहे मैं दुख में हूँ या अन्य बाधाओं से घिरा हुआ हूँ, यह भी नहीं पूछा! जिन आमोदिनीजी की आज्ञापालनार्थ रविनगर गया उन्हीं को कई पत्र डाले। सबके उत्तर नदारद! व्यर्थ बातों का वे क्यों जवाब दें? खैर भाई, हमने

अपराध ही ऐसा किया है ! इतने पर भी आपको अकारण ही कष्ट उठाना पड़े तो इसमें मेरा क्या वश है ? रही मेरी जान, सो उससे काम चले तो यह भी हाज़िर है। ऐसी दशा में जब आप अपनी तकदीर को रोती हैं तो कृपया बतलाइये मैं क्या करूं ? कभी कभी पत्र लिख देता हूँ। यदि इसके लिये भी आप निषेध करें तो उसके अनुसार चलूं। जो कुछ मुझे लिखना या पूछना था, पूर्व पत्रों में लिख चुका हूँ। अब अधिक लिखना व्यर्थ है। मैं भी इस जीवन से तंग आगया हूँ। जो कुछ मैंने सोच लिया है उसे समाप्त करते करते यह शरीर ही नहीं रहेगा ! और यदि मौत आगई और यह बचरहा तो शीघ्र ही यहाँ से × × ×। फिरआपकी प्रार्थना अपने आप ही × × × ×। इसलिये आप को अपने अमूल्य प्राणों को सकट में डालने का प्रयोजन नहीं है, और न प्रत्येक पत्र में इस मत्र के लिखने की आवश्यकता है। इस समय मेरा शरीर अच्छा नहीं है। चौदह या पन्द्रह दिन से आम खून के दस्त हुए ही चले जाते हैं और ३ दिन से दूसरी आँख भी दुखने आगई है। दर्द के मारे बेचैन हूँ। ऐसी दशा में मैंने कुछ अनुचित लिखा हो उसके लिये क्षमा प्रदानार्थ पुनः प्रार्थना है। जिसमें आपका लोक परलोक सुधरे, आत्मगौरव बढ़े एवं भविष्य समुज्वल हो वही करिये। आपके विषय में कुशल पूछने के लिये,आपको यथोचित साहाय्य देने के लिये, हाँ यदि आवश्यकता हो, मेरा ईश्वर दत्त अधिकार है, आप पर लट्ठ चलाने के लिये नहीं, और आपको अदालतों में घसीटकर व्यथित करने के लिये नहीं। आप चाहे जो कुछ करें, किन्तु मुझे अपना दायित्व (फर्ज) मालूम

है। साहरा होकर मेरी प्रकृति राक्षसा नहीं बनेगी। हाथ गहे की लाज से अथवा दुनिया के लिहाज से क्या मैं आपसे आशा करूँ कि आप मेरी इस व्यथित एवं विपन्नावस्था में कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेंगी और अब भी अपनी असीम इच्छा को स्पष्ट (साफ-साफ) शब्दों में लिखकर अनुग्रहीत करेंगी।

अन्त में आपको परमपिता परमात्मा की कसम खिलाकर प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे इस पत्र को सुरक्षित रक्खें और इसे पढकर इस पर यथोचित ध्यान दें। व्यर्थ ही कूडे की टोकरी में न डाल दें, न इसे फाडें और न इसे चिरागअली के सुपुर्द करें। आशा है, आप स्वीकार करेंगी।

ठकुरिया का कागज कहाँ रक्खा है ? सूचित कीजिये। सम्भव है उससे रुपये मिल जायँ।

सब को प्रणाम।

आपका
सत्यनारायण

इस पत्र का जो उत्तर श्रीमती सावित्री देवी ने ३ अगस्त १९१६ को दिया था वह ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है।

ओ३म

ता० ३—१९१६

पडितजी,

तुम्हारा पत्र आया। आपने जो लिखा है कि विचारे ने न कभी अनुचित परामर्श दिया, उनके दो लम्बे चोडे तख्ते

लिखे हुए मेरे पास आये हैं जिनमें मेरी बुराई अखबारों में छपाने तक की धमकी दी है। अपने घर के खाली प्रेस में दूसरों की लडकियों की बुराई छापने का घमड है। जो अपनी बेटी-बहिन की इज्जत का कुछ भी ख्याल नहीं करते उनके ही दिमाग में ऐसे तुच्छ विचार पैदा होते हैं। मैं नहीं चाहती क उनसे पत्र-व्यवहार करूँ। और उन्होंने लिखा है कि मेरी स्त्री ने तुमको पतिव्रता के बारे में उपदेश दिया था, सो तुमने घर जाकर हँसी उडाई। मैंने तुमसे कहा था कि वे ऐसा कहती थीं। अगर वो पतिव्रता होंगी तो अपने लिये होंगी। वे स्त्री पुरुष जुदे रहें या मिल के रहें, मैं उन्हें शिक्षा देने नहीं जाऊँगी। इसलिये मैं नहीं चाहती कि वो मेरी किसी बात में बाधा डालें। अगर वो या तुम सब इस बात में ही पक्के हो तो तुम्हारी इच्छा। परन्तु मेरा कुछ नहीं बिगड सकता। और ये भी लिखा था कि जब उनसे कुछ जिक्र आता है तो आँखों में आँसू भर लाते हैं। सच पूछो तो मैं तो पतिव्रता हूँ नहीं, न मुझसे आगे का आशा रक्खें। और इसमें अच्छा भला और क्या है कि आपको ऐसी दशा में जरूर पतिव्रता ढूँढनी चाहिये जिससे मेरे दारुण दुख दूर हों, और मेरी जान बचे। और आपने जो लिखा है कि दस्तबस्ता असालतन आप के ही हजूर में फरियाद की अर्जी लेकर हाजिर हूँगा तो तुम तो स्वतत्र हो। पर हाँ, स्वतत्र तो मैं भी हूँ, परन्तु तुमने और तुम्हारे मित्रों ने मेरी जान लेने के लिये परतन्त्र अपनी बुद्धि में समझ रक्खा है। इससे ज्याद मुझे और क्या दुख होगा [illegible]

यही चिन्ता रहती है कि किस वक्त वो सब जान लेने के लिये यहाँ आजावें। लेकिन बड़े दुःख की बात है कि हरेक पत्र में इतना खुलासा करके लिखती हूँ और किसी की जान नहीं लेती। सिर्फ अपनी जान बचाने के लिये तुमको लिख दिया था लेकिन चारों तरफ आप सबों के पत्रों की बौछार होरही है। तुमने जो लिखा है कि इस विषय में आज अधिक नहीं लिखूँगा? थोड़ा तो इतना लिखा जाता है, ज्यादा और कितना होगा? न जाने परमात्मा इन चिट्ठियों का कब अन्त करेगा। उसकी बड़ी ही दया समझो तो मुझको अपनी जिन्दगी में पत्रों की बौछार बन्द हो। पर हाँ, ये तो मैं जानती हूँ कि मेरे मरने के बाद सबके कागज कलमों को विश्राम लेना पड़ जायगा और आपकी त्रिवेणी जो यह निकली है सो मुझको खाकर द्विवेणी बहती रहेगी। सो वो तुम्हारे कर्मों का फल है। द्विवेणी को मैं दूर नहीं कर सकती। अपनी जान खोकर त्रिवेणी का एक हिस्सा दुख दूर कर सकती हूँ। बाकी नहीं। आप मेरे पास पत्र न डालें तो मैं तोबकतु पत्रों की बौछार क्यों करूँगी? मैं तो जो भी लिखती हूँ वो सच ही लिखती हूँ। मैं कटु शब्द नहीं लिखती और असीम इच्छा को स्पष्ट शब्दों में लिखकर अनुग्रहीत ही करती हूँ कि आप मुझसे किसी प्रकार की आशा न रक्खें और मेरी जान मुझको बख्श दें। अगर ये बात तुम्हारी समझ में नहीं आती और बार बार हरेक खत में यही लिखा आता है कि तुम्हारी इच्छा क्या है सो मैं तो लिख चुकी। इसके विरुद्ध चलकर आप मेरी जान के गाहक बनेंगे, बस यही

होगा। दुनियाँ में हजारों पुरुष है जो बडे बडे उपकार करते हैं। आपने मेरी जान लेने को ही उपकार समझ रक्खा है। अच्छा है भविष्य विषयक जो धारणाएँ हैं, या जो आप सबों ने भविष्य में करने के लिये विचार रक्खी है, ये सब जीते जी के झगडे हैं। और अच्छा है, आप सबों की इच्छा इसी में है कि जान लेनी चाहिये। ईश्वर तुम्हारी इच्छा को पूरी करे। ठकुरिया का तमस्सुक तुम्हारी बहिन जानकी ने उससे लेकर रक्खा है, मेरे पास नहीं है। इस महीने में या और महीनों में मेरा कोई मतलब भेजने का (पत्र भेजने का ?) नहीं है। तुम भेजो या मत भेजो। मैं तो छुटकारा पाचुकी।

हस्ताक्षर सावित्री

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पंडितजी ने अपने पत्र में लिखा था —"इस समय मेरा शरीर अच्छा नहीं है। चौदह या पन्द्रह दिन से आम खून के दस्त हुए ही चले जाते हैं और ३ दिन से दूसरी आँख भी दुखने आगई है। दर्द के मारे बेचैन हूँ। और पत्र के अन्त में प्रार्थना भी की थी कि "हाय गहे की लाज से अथवा दुनिया के लिहाज से क्या आपसे आशा करूं कि आप मेरी इस व्यथित एवं विपन्नावस्था में कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेंगी ? श्रीमतीजी ने उनकी प्रार्थना कहाँ तक स्वीकृत की, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। उन्हीं दिनों सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पद्य बनाया था।

उसी समय "झरनों को निर्झारित" करते हुए सत्यनारायणजी के "व्यथित एव विपन्न" हृदय से यह ध्वनि निकली थी —

भयो क्यों अनचाहत को संग ।
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतंग ॥
लखि तव दीपति-देह शिखा में निरत विरह लौ लागी ।
खिंचति आपसों आप उतहि यह ऐसी प्रकृति अभागी ॥
यदपि सनेह भरी तव बतियाँ, तऊ अचरज की बात ।
योग वियोग दोउन में इक सम नित्य जरावत गात ॥
जब जब लखत तबहिं तव चरनन, वारत तन मन प्रान ।
जासो अधिक कहा तुम निरदय, चाहत प्रेम प्रमान ॥
सतत पुरातन ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत ।
निराकार ह्वै जात यहाँ लौं तउ जनकों तरसावत ॥
यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुराकावै ।
सत्य बताबहु का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै ॥

जब आपने अपनी यह कविता चतुर्वेदी देवीप्रसादजी एम्० ए० को सुनाई तो चतुर्वेदीजी ने कहा—"विवाह के बाद हम तो आपके मुख से कोई शृङ्गारमय कविता सुनने की उम्मेद करते थे और आप यह बनाके लाये हैं —'भयो क्यों अनचाहत को संग !"

उन्हीं दिनों आपने अपने मित्र जीवनशङ्करजी याज्ञिक एम्० ए० को लिखा था कि सूरदास का पद "कुसमय मीत काको कवन" भेज दीजिये। याज्ञिकजी ने पद भेजते हुए लिखा था "क्या मैं समझ गया हूँ कि आपको यह पद किसके लिये मँगाना पड़ा है ?"—

यहाँ पर एक बात और लिख देना आवश्यक है। वह यह कि श्रीमती सावित्री देवीजी आमोदिनी को जो पत्र भेजती थीं उनका कुछ भाग हिन्दीलिपि और कुछ गुरुमुखी लिपि में होता था। हिन्दी लिपि में तो साधारण सी बातें होती थीं और गुरुमुखी में न जाने क्या क्या लिखा रहता था! सत्यनारायणजी ने गुरुमुखी के इन पत्रों का अन्वेषण किया था और उनमें निकला था—"दुष्ट मुकुन्द का सत्यानाश।"

इस नाजुक और दुःखद विषय पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। सम्भवतः इस पत्र व्यवहार के पढ़नेवाले कई सज्जन सत्यनारायणजी को बेहद नर्मी व कमजोरी का अपराधी बतलावेंगे और कुछ अंशों में उनकी यह सम्मति युक्तिसंगत भी होगी, पर जो लोग सत्यनारायणजी के कोमल स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे उनके हृदय में सत्यनारायणजी के प्रति सहानुभूति ही उत्पन्न होगी।

सत्यनारायणजी के प्रति जो हृदयहीनतापूर्ण व्यवहार हुआ था उसका कारण ढूँढते ढूँढते हमारे हाथ श्रीमती सावित्री देवी के नाम का सुख संचारक कम्पनी मथुरा का ४।३।१६ का निम्नलिखित कार्ड पड़ गया—

वी० पी० विभाग सुख संचारक कं०

पारसल नं० १९५७ ४।३।१६ मथुरा

आपकी सेवा में आज्ञानुसार नीचे लिखे हिसाब से माल भेजा

आपके कहने के मुताबिक आपके साथ अपनी जान देने को तैयार हूँ।

गुलेनार (हँसकर)—मुझको तुमसे जैसी उम्मेद थी तुमने वैसा ही जवाब दिया है। क्या तुमने जो कुछ कहा, वह सच कहा?

रहमान—क्या मैंने आज तक कोई बात आपसे झूठी कही है? जिस वक्त जो हुक्म आप फरमावेंगी, बंदा उसी वक्त उसकी तामील करेगा।

गुलेनार ने रहमान को इस तरह अपनी ओर कर एक रात को मौका पाकर अपने शौहर के खाने में जहर मिला दिया।

खाना खाने के बाद जब खुरशैदअली—गुलेनार का शौहर—बाहरवाले महल में जाने लगा, तब ही लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा और थोड़ी देर बाद मुँह से झाग देने लगा इत्यादि

पुस्तक हमने जहाँ की तहाँ रखदी और सोचने लगे—ऐसी पुस्तकों से क्या लाभ? इनसे क्या शिक्षा मिल सकती है? इनका पाठकों और पाठिकाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अस्तु, विषयान्तर हुआ जाता है। इन पहेलियों को सुलझाना तो साहित्य-समालोचकों का कर्त्तव्य है। हम तो यहाँ जीवन चरित्र लिख रहे हैं। हमें इनसे क्या प्रयोजन? इस अप्रिय विषय को यहीं छोड़िये और मेरे साथ कोरे, सत्य ग्राम के वासी के अन्तिम दिवस और मृत्यु का हृदय वेधक वृत्तान्त पढ़िये।

अन्तिम दिवस और मृत्यु

ब्राह्मण-स्कूल में शिक्षा का काम



जिस समय विवाह के लिये पत्र व्यवहार हो रहा था उस समय सत्यनारायणजी ने श्रीयुत मुकुन्दराम जी को एक पत्र में विवाह के प्रस्ताव का विरोध करते हुए लिखा था—"स्वतंत्र जीवन ही मेरा जीवन है। नौकरी चाकरी कभी की नहीं।" विवाह के बाद सत्यनारायणजी को नौकरी करनी पड़ी, क्योंकि मन्दिर से जो जमीन लगी हुई थी उससे कुल ३००) रु० साल की आमदनी होती थी। जब अपनी मृत्यु के पहले मुकुन्दरामजी फीरोजाबाद आये थे तो उन्होंने मुझसे कहा—"मेरी पुत्री ने पंडितजी से कहा था कि जो चीज ठाकुरजी की है उसे मैं नहीं खाने की। इसलिये उन्हें नौकरी करनी पड़ी।"

ता० ८ जुलाई सन् १९१६ को सत्यनारायणजी ने निम्न लिखित प्रार्थना पत्र ब्राह्मण स्कूल के सेक्रेटरी के पास भेजा था—

To,

The Secretary,

Brahman School

AGRA

Sir,

Hearing that services of an under graduate are required in your School I offer myself to the same

क्योंकि पंजाब-विश्वविद्यालय में उसके नियुक्त होजाने से अब अधिक विलम्ब करना दुस्साहस होगा। इसलिये शङ्का है कि उक्त कारणवश निर्दिष्ट निबन्ध को तैयार कर यथासमय उपस्थित करने का कदाचित ही मुझे अवकाश मिले। आशा है, मेरी वर्तमान स्थिति पर ध्यान देते हुए आप मुझे क्षमा करेंगे।

हाँ, मुझसे भी कहीं अधिक अच्छे झालरापाटन के पूज्य मित्र प० गिरिधर शर्मा हैं। वह उक्त विषय पर अत्यन्त सुन्दर व रोचक लेख लिख सकते हैं। इस कारण उनके साहित्य के उन्नत परिज्ञान से लाभ उठाने के लिये आपकी सेवा में सादर सानुरोध प्रार्थना है"।

७ फर्वरी को सत्यनारायणजी ने अपने मित्र डाक्टर लक्ष्मीदत्त (फीरोजाबाद) को लिखा था —

"सिडीमती आजकल हरिद्वार हैं। जब उनका पत्र आया है तब उसमें उन्होंने अपनी तबियत ठीक ही बताई है। हाँ, यहाँ आने पर यदि उन्हें, जैसी आशा है, रोग ने ग्रसा तो आपको अवश्य कष्ट दूँगा। आजकल "मालती माधव" नाटक पर पिलाई है और आप के चरणों की कृपा से ,लगभग समाप्तप्राय हो चुका है। आशा है कि एक सप्ताह में अनुवाद कार्य्य हो चुकेगा। आपका उत्तर रामचरित और मालतीमाधव दोनों Punjab University की क्रम से High Proficiency and Honurs Examinations में prescribed होगये हैं। इस हेतु आपको तथा श्रीमान्भवन को बधाई"।

इसीदिन सत्यनारायणजी ने प० पद्मसिंहजी शर्म्मा को लिखा था—"गत दिसम्बर के प्रारम्भ से ही मैं आपके "मालती माधव" में लगरहा था। साधारणतया जैसे-तैसे उसे आज समाप्त कर पाया है। यथासम्भव भाषा का सुधार भी किया गया है। एक प्रकार से उसे गढ़ दिया है। अब जड़ने का अथवा विविध प्रयत्नों द्वारा उसमें अभिनवत्व लाने का कार्य आप के लिये अलग रख दिया है। एक बार उसे और देखलूँ, फिर आपकी सेवा में भेजने का यत्न किया जाय। आशीर्वाद दीजिये जिससे इस दुस्तर कार्य्य से शीघ्र निस्तार मिले"।

इसके उत्तर में पद्मसिंहजी ने लिखा था। "मालती माधव" की आप पुनरालोचना कर गये। बहुत अच्छा हुआ। मैं उसे फिर आद्योपान्त एक बार आपसे सुनना चाहता हूँ। कोई ऐसा मौका मिले कि श्री प० शालग्रामजी, नन्दा और हजूर सब एक जगह ४-५ दिन के लिये इकट्ठे होसकें तो ठीक काम बने। क्या आप इन्दौर सम्मेलन में जायँगे?

श्रीमती सावित्रीदेवीजी के नाम पत्र

ता० ११।२।१८ को रात के बारह बजे सत्यनारायणजी ने श्रीमती सावित्री देवी के नाम जो पत्र लिखा था, वह देवीजी के पास सुरक्षित था। उन्होंने मुझे वह पत्र दिखलाने की कृपा की थी। उसमें लिखा था—

११—२—१८

अन्धेर कैसा कर रहो है बेवफाई आपको।
चार दिन की चाँदनी थी × × आपको॥
ख़याले ख़ाम है अपनों से फायदा पाना।
मदद के काम किसी दिन गौहर नहीं आता॥
अजग खफा है और फलक मुद्दई जिमी दुश्मन।
कोई जमाने में अपना नजर नही आता॥
करूँ मैं दुश्मनी किससे, कोई दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने जगह छोड़ी नही दिल में अदावत की॥

आपका दर्शनाभिलाषी—
सत्यनारायण

मेरे नाम पत्र

ता० १२ फर्वरी १९१८ को सत्यनारायणजी ने मेरे नाम निम्नलिखित पत्र भेजा था—

१२।२।१८
ब्राह्मण स्कूल

श्रीयुक्त भाई बनारसीदासजी,
पालागन

आज ११ दिन पीछे आपका कृपा-पत्र श्री पाठकजी से मिला है। हाँ, पूर्णानन्दसिहजी (सम्पूर्णानन्दजी ?) का एक पत्र आया था। उसका मैंने उसी समय उत्तर दिया था। आपका क्या, समझ

चतुर्वेदी जाति का,यह शरीर चिरऋणी है। जिस पैतृक प्रेम से आप लोग मेरे साथ बर्ताव कर रहे हैं उससे उऋण होना इस जन्म में तो कठिन है। उऋण होने से यदि सम्बन्ध टूटने की बात हो तो मुझे यह उऋण होने का भी नहीं चाहिये।

आपके पत्र से ज्ञात—विश्वास—हुआ कि 'हृदय-तरंग' इस संसार में उठ सकेगा, क्योंकि × × × । इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। यह इस ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है। इसी से ऊपर कहा हैं कि जो आपके द्वारा संग्रहीत हुआ है, जिसे आपका अवलम्ब मिला है वह अविलम्ब ही अवश्य २ प्रकाशित हो। यद्यपि आपको नहीं चाहिये, (वह) आपकी कीर्ति कौमुदी से, दिशाओं को मुग्ध करेगा, इसमें एक अक्षर भी मिथ्या नहीं।

अस्तु, जब चाहें आप तब उसे भेज सकते हैं। सेवा करने के लिये हर समय तैयार हूँ। "मालती-माधव" एक प्रकार से समाप्तप्राय होचुका है। किसी सहृदय द्वारा उसकी पुनरावृत्ति होना परमावश्यकीय है। देखें, किसे ईश्वर भेजे। पीछे छपने का प्रबन्ध हो सकेगा।

श्रीमान गान्धीजी की प्रशंसा में या आपकी ओर से स्वागत विषय में तुकबन्दी करनी पड़ेगी, यह कृपया एक कार्ड द्वारा और सूचित कर दीजिये।

---

* यहाँ पर सत्यनारायणजी ने लेखकके विषय में कुछ ऐसी अत्युक्तिमय प्रशंसात्मक बातें लिखी थीं जिनका उद्धृत करना अनुचित प्रतीत होता है। —लेखक

यदि इसका शरीर निरोग—चलने फिरने लायक भी—रहा तो यथासम्भव अवश्य आप लोगों की सेवा में पत्र पुष्प लेकर उपस्थित होने की प्रबल इच्छा है। भगवान विपिनविहारी से प्रार्थना है कि वह उक्त इच्छा को पूर्ण करें। सब प्रेमियों को प्रणाम !

आपका—

सत्यनारायण

आज मैं प्रयागराज जा रहा हूँ। यदि आप उचित समझें तो अधिकारी जगन्नाथदास विशारद विरक्त मन्दिर, भरतपुर से अथवा चिन्मय जगत के भूतपूर्व सम्पादक से लिखा पढ़ी करें। मुझे तो वह ठीक ठीक उत्तर ही नहीं देते।

स० ना०

श्रीसावित्री देवी तथा उनकी माता नारायणी देवी के नाम पत्र

ता० ८ मार्च को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र श्रीमती सावित्री देवी जी के नाम भेजा था—

श्रीमती

यथायोग्य

आपने लिखा था कि अपनी कुशलता लिखना। यकायक दो दिन से तबियत खराब होगई है—दस्त होने लगे हैं—ऐसी ही दशा रही तो खाट पर लेटना पड़ेगा। जानकी का सिर चक्कर खाने लगा है।

विचारी गिर पडी। उसके कई जगह लग गई है। जो एक बार भी खाना मिलता था वह भी नसीब होने की कम सम्भावना है। पुस्तक प्रेस में है, इसलिये शहर आना पडता है। द्वारिका घर गया है। मेरी ही सब तरह आफत है – घर शहर जहाँ देखो वहाँ घबडाया सा फिरता हूँ। इसलिये यदि आप अपना और मेरा हित चाहती हो तो तुरन्त पत्र लिखते ही उत्तर स्वरूप स्वय किसी विश्वस्त पुरुष के साथ नानाजी हो या कुन्दन हो, यहाँ चली आइये। आपको यह सब यों लिखदिया है कि आप कहतीं कि मुझे सूचना न दी। इससे अधिक विपत्ति मुझ पर कभी न आवेगी। आप के घबडाने के डर से तार नहीं दिया है। इसी कार्ड को तार समझना।

आपका —

सत्यनारायण

श्रीमती नारायणीदेवीजी के नाम निम्नलिखित पत्र उन्होने लिखा था,—

श्रीमती परमपूजनीय माताजी

प्रणाम

यकायक तबियत खराब होगई है। कल से कई बार शौच भी गया हूँ। यदि ऐसा ही हाल रहा तो जल्दी खाट में गिरने का अन्देशा है। यहिन जानकी का दिमाग घूमने लगा है। विचारी गिर पडी। इधर पुस्तक प्रेस में है। द्वारिका अपने घर गया है। जानकी के बीमार होने से एक दफा भी गति से भोजन नहीं मिलता। बीमारी की वजह से

सिंहजी कर्मचारी रेवेन्यू विभाग, रियासत इन्दौर के शब्दों में सुन लीजिये।

"मैंने देखा कि एक सज्जन वृन्दावनी मिरजई पहने दो पैसे की दुपल्ली सफेद टोपी लगाये, सफेद पिछौरा बगल में दबाये, हाथ में कागजों का पुलिन्दा लिये 'नंगे पाँव कुर्सी पर बैठे हैं। मैं धीरे से उनके पास पहुँचा और नीचे लिखे अनुसार बात चीत हुई।

मैं—क्या महाशयजी आपके पास इस स्थान पर बैठने के लिये टिकट है ?

ग्रामीण पुरुष (कुछ मुस्कराते हुए, परन्तु करुणाजनक भाव से) नहीं महाराज, मेरे पास टिकट तो नहीं है।

मैं—फिर आप यहाँ कैसे बैठे हैं ?

ग्रामीण पुरुष—(।उसी भाव से।) महाराज, मुझे सम्मेलन के एक उच्च कर्मचारी ने यहाँ बैठने की आज्ञा दी है।

मैं—क्या आप कृपा करके उन उच्च कर्मचारी का नाम बता देंगे ?

ग्रामीण पुरुष—महाराज, मुझे वापना साहब ने यहाँ बैठने की आज्ञा दी है।

यह सुनकर मैं वहाँ से चल दिया और रायबहादुर ठाकुर सरजूप्रसादजी मन्त्री सम्मेलन के पास जाकर उनसे सब हाल सुनाया। डाक्टर साहब ने हँसकर कहा— ठाकुर साहब, क्या आप

सत्यनारायणजी को नहीं जानते हैं ? यह सुनकर मेरे ऊपर वज्र सा टूट पड़ा ! × × × सभा-विसर्जन होने पर बड़ी मुश्किल से पंडितजी का पता लगाया। बहुत से मनुष्य उनको घेरे खड़े थे। मैंने हाथ जोड़कर कहा—"पंडितजी अनजाने का अपराध क्षमा कीजिये। "चहिय विप्र उर क्षमा घनेरी"। यह सुनकर पंडितजी मुसकराते हुए हाथ जोड़कर कहने लगे—"ठाकुर साहब आप क्षत्रिय हैं ! ब्राह्मण तो सदा क्षत्रियों के आश्रित रहे हैं। क्षमा-कमा काहे की ?"

कुछ प्रस्तावों के पास हो जाने के बाद महात्मा गांधीजी ने प्रोग्राम में पढ़कर कहा—"अब सत्यनारायण कविरत्न अपनी कविता सुनायेंगे"। सत्यनारायणजी अपनी मिर्जई सँभालते हुए और कागज के दो टुकड़े हाथ में लिये हुए उठे और मेज के निकट उपस्थित हुए। मञ्च के रायसाहबों और रायबहादुरों को कुछ हँसी आई।

सत्यनारायणजी ने रसखान के दो कवित्त पढ़े।

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
रसखान कबै इन नैनन ते ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो कियो ब्रजछत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं वहि कालिन्दी कूल, कदम्ब की डारन

इन कवित्तों को सत्यनारायणजी ऐसे मधुर स्वर से पढ़ा कि सम्पूर्ण पंडाल में सन्नाटा छा गया। श्रोतागण दंग रह गये। फिर उन्होंने अपनी "प्रतिनिधि प्रेम पुष्पाञ्जलि" पढ़ी।

दरशन शुभ पाये।
धन्य भाग इन नयननु के जो लखि तुमकों सरसाये॥
जैसी कानन सुनी सुखद सुचि सुन्दर कीर्ति तुम्हारी।
सो सब आज आपु हम देखी परम पुनीत पियारी॥
श्रीघनश्याम प्रेम के पपिया रसनिधि मीन प्रवीन।
दया-द्रवित तव हृदय मनोहर निरमल नित्य नवीन॥
सरल सुभाव अभेद अपनपौ मति अनन्य तव भ्राजै।
मनहुँ प्रतीति प्रीति प्रतिभा प्रिय पुण्य प्रवाह विराजै॥
प्रेम पुनीति मार्ग के गामी सब जग के उजियारे।
प्रभुपद पद्म पराग राग के अलबेले अलि प्यारे॥
हिन्दु नयन चकोर चन्द्र तुम नवजीवन विस्तारक।
सहृदय हृदय कुमोद विकासन मोद भरन उपकारक॥
चरन कमल तव दरसि परसि हम हरे-भरे भये आज।
फूलत ज्यों द्रुमलता सुमनयुत लहि ऋतुराज स्वराज॥
यह जातीय बेलि जो हिन्दी जन हिय बन लहरावे।
पुनकि सींचिये ऐसी बस जो अब नहिं सूखन पावे॥
मोहन प्यारे तुमसों निवदिन बिनय विनीत हमारी।
हिन्दू हिन्दी हिन्द देश के बनहु सत्य हितकारी॥

जिस समय सत्यनारायण यह कवितापढ़ रहे थे, सम्पूर्ण मंडप करतल-ध्वनिसे गूँज रहा था। इसके बाद उन्हों ने भक्ति-पूर्वक महात्मा

गांधीजी की ओर मुख करके और श्रद्धा-पूर्वक सिर नवाकर कहा—"अब कुछ महाराज की सेवा में तुकबंदी निवेदन करूँगा" फिर उन्होंने "श्री गान्धी स्तव" पढा। जिस समय उन्होंने—

तुमसे वस तुमही लसत, और कहा कहि चित भरैं।
'शिविराज' 'प्रताप' अरु 'मेजिनी' किन किन सों तुलना करैं॥

यह पद्य पढा था, उपस्थित जनता का हृदय प्रेम से विह्वल हो गया था। स्तव का अन्तिम पद यह था।

प्रभुहि सारथी बने! कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सों बतरात बिहँसि त्रयताप विमोचन॥
धीरज सब विधि देत यही पुनि-पुनि समझावत।
'दैन्य' 'पलायन' एकहु ना मोहि रन में भावत॥
इक निमित्त मात्र है तू अहो, फिर क्यों चित विस्मय धरै।
गोपाल कृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै॥

इस कविता के प्रभाव को प० वेङ्कटेशनारायणजी तिवारी ने अपने "लीडर" "न्यू इंडिया" इत्यादि को भेजे हुए तार में इन शब्दों द्वारा प्रकट किया था—

Pandit Kaviratna Satyanarayan of Agra read very beautiful Hindi poems composed by him, which kept the whole audience spellbound in admiration.

अर्थात् "आगरे के कविरत्न प० सत्यनारायण ने अपनी बनाई हुई बड़ी मनोहर कविताएँ पढ़ीं, जिनकी प्रशंसा में सम्पूर्ण श्रोता गण मन्त्र मुग्ध से हो गये।"

सम्मेलन की बैठक समाप्त होते ही सत्यनारायणजी की कविता की बडी मॉग हुई। किसी ने कहा—"पंडितजी एक प्रति इसकी हमें दे दीजिये'। किसी ने कहा—"हमारे पत्र के लिये कृपाकर एक कापी हमें प्रदान कीजिये।"कोई महाशय अपना विजिटिङ्ग कार्ड देकर कहने लगे—"पंडितजी इसकी एक कापी मेहरबानी करके मेरे नाम बडौदा भेजे दीजिये' और अनेक विद्यार्थी तो इस कविता के लिये मुझे तंग करते रहे। सत्यनारायणजी के पास केवल एक प्रति थी। कई प्रतियाँ तो सत्यनारायणजी ने और मैंने समाचार-पत्रों के लिये नकल कीं, लेकिन वे प्राप्त नहीं थीं। इसलिये इन्होंने मुझे आज्ञा दी कि और प्रतियाँ तुम भेज देना।

स्वयंसेवकों द्वारा अपमानित उस "गरीब बामन" के मधुरस्वर और ललित कविता को इन्दौरवाले बहुत दिन तक नहीं भूले।

इस सम्मेलनके अवसर पर चतुर्वेदी जगन्नाथप्रसादजी ने अपना "सिंहावलोकन" नामक निबंध पढा था। उसे सुनकर आप चतुर्वेदीजी से बोले- "बस ब्रजभाषा से तो एक बरस भर के लिये निश्चिन्त हो गया।'

सत्यनारायणजी से इन्दौर में हमलोगों का मनोरञ्जन हुआ। मैंने उनसे कहा—"मेरी पुस्तक "प्रवासी भारतवासी" का नाम आपकी एक कविता के बीच में आया है। अच्छा बताइये तो सही, कहॉ आया है?" सत्यनारायणजी ने कहा—"यह तो हमैं नॉइ मालुम'। मैंने फौरन ही "श्रीगोखले' नामक कविता की यह पंक्तियाँ पढीं—

फुलो प्रया उच्छिष्ट करन जिन शक्ति प्रकासी।
जिनके अमित कृतज्ञ "प्रवासी भारतवासी॥"

पंडितजी बहुत हँसे और बोले —"जि तुमने खूब याद रक्खी।" फिर मैंने उनसे कहा—"कभी-कभी ऐसा होता है कि कवि अपनी कविता के जिस भाव को नहीं समझता है उसको पाठक समझ जाते हैं"। सत्यनारायणजी ने कहा—"हाँ, ऐसा होता है।"

मैं—"आपकी कविता से उदाहरण दे सकता हूँ।"

सत्यनारायण—"अच्छा बताओ।"

मैंने कहा—"ऐसी तूमा पलटी के गुन नेति नेति श्रुति गावें।" "यह पंक्ति आपने 'माधव आप सदा के कोरे' नामक कविता में लिखी है। इसमें तूमा-पलटी का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रीकृष्ण भगवान देवकी माता के यहाँ से जसोदामैया के यहाँ गये थे इसलिये 'तू मा पलटी' में उनपर व्यङ्ग किया गया है।

सत्यनारायणजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"वा! जि तुमने अच्छौ अर्थ लगायौ है।"

इन्दौर में सत्यनारायणजी मिस्टर सी० ए० डाब्सन साहब से भी मिले थे। डाब्सन साहब पहले आगरे में हेडमास्टर थे और जब वे आगरा छोड़कर आये थे तो सत्यनारायणजी ने उनके लिये अभिनन्दन-पत्र लिखा था। इन्दौर में सत्यनारायणजी को डाब्सन साहब के पास मैं ही ले गया था। डाब्सन साहब उनसे हिन्दी में बातचीत करने लगे। मैं इस बात को नहीं जानता

मैंने। मैंने उनसे पूछा —"आप अपने विवाह से सन्तुष्ट तो हैं ?" सत्यनारायणजी ने कहा—"का कहें ! कछु कहत बन्ति नाँह। तुम हमारे घर कौ ठेका ले लेउ। जमींदारी मन्दिर सब तुमकों सौंपि देंइगे और हमें छुट्टी देउ"। इस प्रकार बातचीत करते हम नर्मदा के पवित्र तट पर जा पहुँचे। नाव तैयार मिली। सब नाव में बैठे और उस पार उतरे। एक पडे ने हमको अपने मकान में ठहरा दिया। सत्यनारायणजी को वहाँ सामान की रखवारी के लिये बिठलाकर हम लोग भोजन की तलाश में निकले। लौटकर आकर देखा तो पंडितजी लापता ! सब जगह तलाश किया—कहीं पता न लगा। फिर हम लोग ओङ्कारेश्वर के मन्दिर पर पहुँचे। वहाँ पर एक सिपाही ने उन्हें कोने में बिठला रक्खा था। वहाँ राजा की ओर से एक सिपाही रहता है जो प्रत्येक दर्शनकरनेवाले से)॥ दो पैसा लेलेता है। पंडितजी के पास पैसे थे नहीं। सिपाही के रोकने पर भी आप भीतर चले गये थे। जब लौटकर आये तो सिपाही ने उन्हें रोक लिया और कहा—"पहले दो पैसे रखदो, तब जाने पाओगे।' इसीलिये आप वहाँ बैठे थे। जब हम पहुँचे तो हमने पूँछा—कैसे बैठे हो !? सत्यनारायणजी बोले—"बैठे का हैं गिरफ्दार हैं। खूब खबरि लई आपने। हम तो जानते कि कोई खबर लिवैया है ई नाँहि। जा राजा के सिपाही के पाले पडे हैं।" हमलोगों ने दो पैसे दे दिये और पंडितजी हमारे साथ दर्शन करके चले आये।

नर्मदा में हम लोगो ने स्नान किये। पडा अपना

काम करके दक्षिणा लेकर चला गया—फिर सत्यनारायणजी ने मुझे बुलाया और कहा—" नर्मदाजी को पानी हाथमें लेउ "—मैंने कहा—" क्यों ? " पंडितजी ने कहा—" लेउ तौ पानी।" मैंने पानी लिया। फिर पंडितजी ने कहा —"तुम कहौ, कि हे नर्मदाजी, हम सत्यनारायण के बाप बनतें × ×।" यह सुनकर मुझे हँसी आगई और मैंने हाथ का पानी गिरादिया। पंडितजी ने कहा—" जि का करौ। हम तुम्हें अपनी जमीन जायदाद सब सौंपते और छुट्टी लेते।"

ओङ्कारेश्वर से हम लोग मोरटक्का की ओर वापिस चल दिये। रास्ते में एक जगह पर पक्का कुँआ था। एक आदमी पानी पिलाता था। हम लोगों ने वहीं विश्राम किया और बैठकर चने खाने लगे। सत्यनारायणजी ने उस पानी पिलानेवाले को भी बुलाया और उसको भी वहीं बिठलाया। पंडितजी मुस्कराते हुए उस आदमी के सामने बैठ गये और बोले —"जि आदमी हमारी ससुरारि के मालूम पर्त्तें।"हम सब हँसने लगे—"हमारी नॉय तो हमारे काऊ मित्र की ससुरारि के है।' फिर सब हँसे।

पंडितजी ने कहा—"हँसत का हौ, पूँछि जु लेउ।" क्यों भैया, कॉ रहतो ?" उसने उत्तर दिया—"आगरे के पास"। पंडितजी ने कहा—" कौन गॉव से ?" उसने गॉव का नाम बतलाया। पंडितजी ने कहा "चतुर्भुज को जानतो ?" वह आदमी बोला "चतुर्भुज की तो हमारी बहन ब्याही है।" सत्यनारायणजी ने कहा "देखि लेउ, हमने ठीक कही कि नॉहि।" हम लोग खूब हँसे! पंडितजी ने उससे कहा—' देखी भैया, बुरौ मत मानियो। तुम तो हमारे घर केई हो।"

इसी प्रकार हसते और बातचीत करते हम लोग मारटका स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ से रेल में बैठकर इन्दौर आउतरे। यह मुझे क्या मालूम था कि पंडितजी से हमारा यह अंतिम मिलन है। उनकी स्मृति हृदय पटल पर चिर काल तक अङ्कित रहेगी।"

इन्दौर से वापसी

ता० ३ अप्रैल को पंडितजी अपने मित्र भागीरथप्रसादजी दीक्षित के साथ इन्दौर से आगरे के लिये रवाना हुए। स्टेशन पर पहुँचाने के लिये मैं गया था। बडी मुश्किल से जगह मिली। * जब गाडी चलने को हुई तो मैंने हसी में कहा—'पंडितजी एक बात हमारी हू मानिओ। जब रेल चलन लगै तब चढियो और जोनों खडी न होन पावै उत्तर परियो।'—पंडितजी ने हँसकर कहा—"भैया तुम्हरी कही जरूर मानिङ्गे"।

चलते चलते मैंने पंडितजी से कहा 'मैं पन्द्रह-बीस रोज बाद धाँधूपुर पहुँचूँ गा तब तक आप "हृदय तरङ्ग" ठीक कर रखिये।" गाडी चलदी और पंडितजी आँखो से ओझल होगये !

अन्तिम पत्र और अन्तिम कविता

इन्दौर में मैंने पंडितजी से निवेदन किया था कि मेरी पुस्तक

* ग्रामीण पोशाक होने के कारण लोग घुसने नहीं देते थे। जैसे तैसे मैंने घुसकर जगह की ओर बिठलाया। पंडितजी बोले—"मिर्जई पहिनबे की जि सजा है।"

"प्रवासी भारतवासी" के टाइटिल पृष्ठ के लिए कोई पद्य बनाकर भेजना। ८ अप्रैल १९१८ को पंडितजी का निम्नलिखित पत्र मिला।

श्री

श्रीमान भाई बनारसीदासजी,

प्रणाम

यहाँ सकुशल आ पहुँचा। आपके अनुग्रह का इसे फल समझिये। आप लोगों को बड़ा कष्ट हुआ।

आपकी आज्ञानुसार टाइटिल के लिए दो पंक्ति भेजता हूँ। पसन्द आने पर काम में लाना। बहुत सोचा, किन्तु इसके सिवाय कुछ न सूझा—

कोई मंत्र* हो कोई तंत्र† हो कैसा हो हो साज।
सत्याग्रह स्वराज ही केवल सबका एक इलाज॥

यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है। इसलिए असल घास चरने चली गई है। क्षमा करिये और कृपा बनाये रखिये। श्रीमान द्वारिकाप्रसाद 'सेवक' से प्रणाम वा नमस्ते कह दीजिये।

घरवे आदि प्रेमियों को प्रणाम।

आपका

सत्यनारायण

---

* मन्त्रि मंडल

† शासन पद्धति—as राजतंत्र, प्रजातंत्र

यह बात ध्यान देने योग्य है कि व्रजभाषा कवि की अन्तिम कविता खड़ी बोली में हुई।

१५ अप्रेल सन् १९१८ की बात है। सन्ध्या का समय था। कुछ झुटपुटा सा हो रहा था। सत्यनारायणजी श्रीमती सावित्री देवीजी को, जो सात आठ रोज पहले ज्वालापुर से धाँधूपुर आगई थीं, "मालतीमाधव" के प्रूफ में से शिव की स्तुति सुना रहे थे। फिर उन्होंने अपनी वह कविता सुनाई जो स्वामी रामतीर्थ के साथ रहने के दिनों में बनाई थी। तत्पश्चात् आपने प० पद्मसिंहजी को भेजी हुई अपनी वह कविता सुनाई जिसमें ये पद्य आये थे।

जो मोसों हँसि मिलै होत मैं तासु निरन्तर चेरो।
बस गुन ही गुन निरखत तिहि मधि सरग प्रकृति कौ प्रेरो॥
यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरो बस कछु नाहीं।
नितनव विकल रहत याही सौं मह्दय बिछुरन माहीं॥
सदा दारुयोषित सम वेबस आज्ञा मुदित पमानै।
कोरी सत्य ग्राम को बासी कहा "तकल्लुफ" जानै॥

कविता सुनने के बाद आपने कहा—भूख लगी है। उनकी गुरु बहन ने कहा 'कल के लिये आटा पिसने के लिये गेहूँ दे आओ, रोटी अभी हाल होती हैं। गेहूँ की डलिया लेकर घर के बाहर गये। उनके साथी गेंदालाल जाट ने कहा—"पडितजी महाराज, पालागन। उसे आशीर्वाद देते हुए गेहूँ डालने चलेगये। उधर से लौटे तो गेंदालाल ने कहा "महाराज दण्डौत'। सत्यनारायण ने कहा "जब हम गये थे तब तुमने पालागन कहा था और अब हम लौट के आये हैं तब

दण्डौत कहते हो, यह बात क्या है?" गेंदालाल ने कहा—"भाई जब तुम गये थे तब पंडितानी के हुकुम से, घर-गृहस्थी के थैले में गेहूँ लेकर गये थे सो हमने पालागन कहा। अब तुम खाली हाथ बाबाजी की तरह लौटे हो सो हम दण्डौत कहते हैं!' सत्यनारायणजी इस युक्तिसंगत बातको सुनकर मुस्कराये और कहा-"तुम तौ ऐसोई मजाक करिबौ करो।" घर पहुँचकर रोटी खाई। उन दिनों धाँधूपुर में प्लेग की बीमारी फैली हुई थी, हेजे का कहीं नामोंनिशान भी नहीं था।* प्लेग से बीमार एक स्त्री को देखने के लिये गये। वहाँ से लौटकर बोले—"जी मचलाता है। जाने क्या हो गया! कसरत करके एक साथ रोटी खाली इससे, या न जाने किससे!"

"केरो सत्य ग्राम को वासी कारण कछू न जाने।"

श्रीमती सावित्री देवी अपने १६।१२।१८ के पत्र में लिखती हैं—

"चारों ओर प्लेग की बीमारी, फैली हुई थी। एक आदमी के कहने पर ध्यान देकर पासके ही घर में एक गिल्टीवाली स्त्री को देखने के लिये चले गये। जबसे बीमारी शुरू हुई थी, वे चाहते थे कि वहाँ से कहीं और चल जाय, किन्तु मेरे ज्वालापुर से देर में पहुँचने के कारण वे इच्छा पूर्ण न कर सके। इस स्त्री को देखकर ओषधि बतलाई और वहाँ से कुछ देर बाद ही वापिस लौट पड़े। मेरा आग्रह था कि बीमारी के किसी रोगी को देखने न जायें, किन्तु उस आदमी की विशेष विनती करने पर साधारण बीमारी समझकर

*सत्यनारायणजी उसी दिन धाधूपुर के निकट के ग्राम महावन की गदी से घी ले के आये थे। —लेखक।

चले गये थे। शोक! वही उनकी मृत्यु का कारण हुई। वापिस लौट कर उन्होंने जिक्र हमसे तक न किया और आप ही प्रसन्नता से घूमते रहे। बाहर जाकर और लोगों से कहा भी कि मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। सबने कहा कि पुस्तकें देखो - चित्त शान्त हो जायगा और हम भी कुछ सुनना चाहते हैं। उन दिनों "मालती माधव" छप रहा था। उसका प्रूफ लाकर कुछ शिवजी की स्तुति सुनाने लगे। स्वामी रामतीर्थजी के साथ रहते हुए जो बनाया था वह "कभी मुझमें तुझमें भी प्यार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो" सब सुनाते रहे। मैं भी सुन रही थी। मुझसे कहा कि यह तुम नोट कर लेना, मैंने रामतीर्थजी की आज्ञा से बनाया था। मैं खुश हुई और चाहा कि उतार लूँ, परन्तु उन्होंने कहा कि अब मुझे सुनाने दो, फिर उतार लेना। कविता में ऐसे मगन थे कि उन्हें अपने शरीर की सुध न रही। रोटी आदि खाने के बाद तालेवर नामक एक लडके से, जो ब्राह्मण स्कूल में पढ़ता था और बीमारी की वजह से हमारे घर पर ही था, बातें करते रहे। पिपरमेण्ट आदि भी खाया। करीब ३ बजे उनके पेट में दर्द हुआ। साथ ही कै दस्त शुरु हुए। सुबह को ५ बजे हमने डाक्टर बुलवाया और उनसे कहा कि डाक्टर आनेवाले हैं। हमको चिन्तित देखकर आप हमें धैर्य दिलाते रहे और इधर-उधर की बातचीत करते रहे। डाक्टर भी बहुत रोगी देखने से न आ सके, दवाइ दे दी, वह उन्होंने खुशी से पीली और चुपचाप लेटे रहे। कै आदि बन्द होगई, फिर अचानक कमर में दर्द शुरू हुआ और सबके दाबने पर भी उन्हें बेचैनी

चढती ही गई। चालना भी बन्द कर दिया। फिर दो आदमी डाक्टर को लेने गये। सब मनुष्य ऐसी दशा सुनकर चले आये। मुझे धीरज बधाने लगे। मैंने कई आवाज दीं, सब निष्फल! उन्होंने कुछ न कहा। घड़ा भर बेहोश लेटे रहे। मालिश की गई, शरद! चढ़ाया गया, पानी डाला, वह भी अन्दर न जा सका! मैं एक दम चिल्ला पड़ी! मुझे उनकी सूरत देखकर यह विश्वास भी न हुआ कि आज अन्तिम विदाई है आज लाख कोशिश करने पर भी मैं न पा सकूँगी! जोर से घबराकर मैंने अपना हाथ सिरहाने की तरफ पट्टी पर दे मारा। एक दम चौंककर मेरी ओर देखा और सदा के लिये हतभागिनी से विदा ले ली!" मृत्यु के दो घंटे के बाद इलाज के लिये डाक्टर साहब आये।

इस प्रकार बिना समुचित चिकित्सा हुए सरल प्रकृति प्रेमी सत्यनारायण ने सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं! जब मैं सत्यनारायण की उस समय की स्थिति की कल्पना करता हूँ, जब वे मृत्यु शय्या पर लेटे होंगे, आगरा निवासी मित्रों का, जिन्हें कुछ सूचना नहीं दी गई थी, स्मरण करते होंगे, आधी छपी प्रिय पुस्तक "मालती माधव" की याद करते होंगे और फिर सोचते होंगे कि अब डाक्टर आता है, डाक्टर अब आता है—डाक्टर नहीं आता, जीवन का अन्त आ जाता है! मेरा हृदय भर आता है! अधिक नहीं लिखा जाता! कुछ देर ठहरिये और चार आँसू मेरे साथ आप भी बहा लीजिये!!

शव के साथ धाँधूपुर के बहुत से ग्रामीण मित्र गये। जो हल चला रहे थे वे हल छोडकर और जो खेत में पानी दे रहे थे अपना काम छोडकर शव के साथ हो लिये। अगूरीबाग के निकट, यमुना तट पर, चिता बनाई गई तालेवर विद्यार्थी ने अग्नि-संस्कार किया। थोडी देर में सत्यनारायण की सरल-सौम्य मूर्ति सदा के लिये आँख से ओझल हो गई !

वह कोमल काकली कलित सो, सीखी, वृन्दा विपिन निवेश।
मस्त कान्ह को कर कर देती, हर हर लेती हृदय प्रदेश॥
राष्ट्र भारती के उपवन में होती रहती थी वह कूक।
कर कर दिये क्रूरताओं के उसने सदा करोडों टूक॥
वह कोकिल, उड गया गया—वह गया—कृष्ण ! दौडो लाओ।
वन देवी का धन लौटाओ,—सच्चे नारायण ! आओ॥



सत्यनारायणजी का व्यक्तित्व



घनी लेखकों में शिरोमणि प्लूटार्क ने एक जगह लिखा है—“मनुष्य के गुणों और अवगुणों की यथार्थ जाँच सदा उसके अत्यन्तप्रसिद्ध कार्य्यों में ही नहीं होती, बल्कि प्राय एक तुच्छ कार्य्य—एक छोटीसीबात अथवा मजाक—से मनुष्य के असली चरित्र पर जो प्रकाश पडता है वह उसके लडाई के दिनों के बडे से बडे घिराव और युद्धों से नहीं पड सकता।” इसी आदर्श वाक्य को सामने रख कर मैं सत्यनारायणजी के जीवन पर एक दृष्टि डालना चाहता हूँ।

कवितामय जीवन

पहली बात जो सत्यनारायणजी के जीवन में दीख पडती है वह यह है कि उनका जीवन कवितामय था। चिट्ठियाँ प्राय कविता में ही लिख दिया करते थे।

१८।४।१९०५ को सत्यनारायणजी के पास उनके एक मित्र का निम्नलिखित पत्र पहुँचा।

आगरा
१८।४।१६०५

अरे ओ पंडित,

जय श्रीसत्यनारायणजी की !

लल्लू तेरी तारा रूपी सरसुती में छपी। मैंने आज देखी ही। सीतला गलीवारे व्रजनाथ के पास आजी आई है। द्विवेदीजीने बड़ं किरपा करी, ७० ही लैन छापी हैं। जौ फुरसति होय तो आयवे देखिजैयो और हू काऊ को बनी बसत वामें छपो है।

हमारी ओरु चौबेजी और पंडितजी की सला पतवार को तुम्हारे म्हाँ आइवे की भई है। जो तुम्हारी राजी होइ तो चलें आमें।

पंडितजी महाराज तव निकट विनय इक मोर।
पत्रोत्तर दीजो हमें करिके किरपा चोर॥

नाम लिखने पै कुछ नहीं मौकूफ,
तरज तहरीर से समझ लेना।

(एक हितचिन्तक)

पंडितजी ने इस पत्र के ऊपर लिख दिया—

जाने यह कर कमल सों लिख्यो ताहि आसीस।
पूजहि करि करुणा सकल तासु काम जगदीस॥

और पत्र का उत्तर दिया।

तव आवन की सुनत ही उर अति बढ्यो उछाह।
हम प्रेमी पागलन कौं और चाहिये काह!

एक महाशय ने पत्र भेजकर मांसाहार के विषय में आपकी सम्मति पूँछी। आपने जवाब में लिखा—

भगवन कृपा पत्र तव आयो ।
आपनो मत यथार्थ प्रगटन में यह कबहुँ न सकुचायो ।
जो जग रसना सों जल पीवत ते सब मांसाहारी ।
उनकी दया रहित रद रचना मनुज लोक सों न्यारी ॥
स्वयं सिद्ध यह प्रकृति नियम है फिर कोउ बात बतावै ।
याही सों कपि खात न आमिष सुलभ सत्य दरसावै ॥

किसी मित्र को नये वर्ष की बधाई देते हुए आपने लिखा था—

यह नइ बरस ।
देइ तुमको सकल मंगल मधुफल-प्रद हरस ॥
प्रकृति पावन परम भावन प्रेमकर प्रिय परस ।
आत्म गौरव दिव्य द्युतिमय अभय जीवन दरस ॥
शुद्ध सत मन सरल सुन्दर सदय सहृदय सरस ॥

किसी लेखक ने अपनी पुस्तक 'मनोविलास' पंडितजी के पास भेज दी। आपने उसकी स्वीकृति इन पंक्तियों में दी—

देखा मनोविलास ।
पढ़कर पूरन प्रेम भाव का उर में हुआ विकास ॥
यही विनय है सतचित आनँद पावन जगदाधार ।
दे क्षमता तुम्हें जिससे हो हिन्दी का उपकार ॥

आपने एक मित्र को पत्र लिखते हैं—

आहा ! आइ आई आई नव पत्री कान्त सुखदाई ।
दारुन विरह विथित जो छतियाँ तिनकी तपनि बुझाई ॥

ज्योंहो हँसमुख चपल चाव चललैनो छवि दरसाई।
ललकि धरी सो धाइ हृदय में पलक कपाट चढ़ाई॥
लहि इकन्त निहचन्त सकल विधि सत्य करत मनभाइ।

अपने परम मित्र लक्ष्मीदत्तजी के कमरे पर गये। उन दिनों लक्ष्मीदत्तजी डाक्टरी पढ रहे थे। आपने पद्य लिखकर उनके दरवाजे पर टाँग दिया।

प्रथम पाठ जो पढत हम मानव-जाति सनेह।
काव्य हमारौ सकल विधि विमल दया कौ गेह॥

वैश्य बोर्डिङ्ग-हाउस में गये। उस समय रात के ८ बजे थे। उनके मित्र माथुरीप्रसादजी ने कहा—"पण्डितजी हमारी हस्तलिखित पत्रिका "भारती" के लिये कुछ कविता बना दीजिये"—सत्यनारायणजी ने उत्तर दिया—"इस वक्त दिमाग काम नहीं करता।" अयोध्याप्रसाद जी पाठक के घर के लिए चल दिये। मुजफ्फरखाँ के बाग तक पहुँचे थे कि लौट आये और बोले—'अच्छा लेउ लिख लेउ'—

अचर ब्रह्मविचार सार में मग्न मुदित मन।
प्रकृति हस आसीन स्वय प्रतिभा नवजीवन॥
विलसत प्रभा प्रदीप्त मञ्जु मुख मङ्गल पावन।
ब्रह्मचर्य पूरन प्रताप जगमगत सुहावन॥
अभिनव जग जागृति भावमय कर वीणा झनकारती।
श्रम श्रुति पाणी त्यों सदय हत वरदा वाणी, भारती॥

श्रीयुत राधाचरणजी गोस्वामी ने अपने पुत्र के विवाहोत्सव के लिये जो पत्र भेजा था, उसमें लिखा था—

"संवत वसु रस अङ्क विधि
माधव हरि दिन श्याम।
करिके कृपा बरात में,
चलिये मथुराधाम॥

यह पत्र २६ अप्रैल सन् १९११ को, जिस दिन बरात जानेवाली थी, उसी दिन, पण्डितजी को मिला। आपने उत्तर दिया—

सुखद पत्र मिल्यो प्रिय आपको—
अवधि, किन्तु लह्यो दिन के दिना।
सिर धरौं त्वपदाम्बुज रेणु कौं,
अस कहाँ मम मंजुल भाग है॥

यहँ बड़े उरझे गृह कार्य्य हैं,
न अवकाश प्रभो यहि हेतु सौं।
सदय मो अपराध क्षमा करो,
दिन गये कछु थोपद पेखिहौं॥

पण्डितजी पद्मसिंहजी ने सत्यनारायण को बहुत दिनों से कोई चिट्ठी नहीं भेजी थी। इसकी शिकायत आपने इन शब्दों में की थी—

पदम, तव हृदय बड़ो बेपीर।
सोचत ना यह भँवर बिचारो कब को अहहि अधीर॥
रुचिर मधुर दम तनिक न खोलत का अपराध बिचारयो।
गुञ्जत साध न याके मनकी टेरि टेरि ये हारयो॥
कोमल परम कहावत तोऊ कठिन भये अब ऐसे।
काऊ की दुख दरद न मानत जानत ना कछु जैसे॥

अपने एक अन्य मित्र को आपने लिखा था —

प्रियतम कृपापत्र तव आयो।
बड़े प्रेम से ताहि चूमि कै अपने दृगनि लगायो ॥
जब तुम जानत ब्रजभाषा को निज प्रानहुँ सों प्यारो।
सब प्रकार सेवा के मोसों हो पूरण अधिकारी ॥
हरिश्चन्द्र श्रीधर ग्रन्थनु में प्यारी रुचि सों पागो।
सत्य सनेह सहित नित नूतन भारतमन अनुरागो ॥

रसिकतापूर्ण-स्वभाव

सीधे सादे और सरल होने पर भी सत्यनारायणजी खूब हँसते-ाते थे। मुहर्रमीपन तो उन्हें छू भी नहीं गया था। मजाक करनेमें ड़े कुशल थे। सत्यनारायणजी को रस-भरे रसिये बहुत पसन्द थे। पुत सत्यभक्तजी ने अपने १८।११।१६ के पत्र में सत्याग्रह-श्रम (साबरमती) से लिखा था—

"सत्यनारायणजी को रसियोंका शौक तो था पर जहाँ तक े मालूम है उन्हें विशेष रसिया याद न थे। क दिन उन्होंने भरतपुर की समिति में मुझ से तथा अन्य व्यक्तियों से, जो वहाँ बैठे थे, इस विषय में पूँछा। मैं तो इस कार्य के करने का साहस न करसका, पर एक दूसरे व्यक्ति ने रसियों के कुछ भाग सुनाकर कविरत्नजी को कुछ यानगी खलाई। उनमें से एक रसिये की टेक उन्हें विशेष पसन्द आई और उसे वे कभी-कभी गाया भी करते थे।

"—बछेरी डोलै पीहर में!"

व्रजमें—विशेषकर भरतपुर में—रसियों का विशेष प्रचार है ग्रामीण लोग, इन्हें प्राय गाया करते हैं। सत्यनारायण को इतनी कोई चीज पसन्द नहीं थी जितनी ग्रामीण आदमियों की सगति। सत्यनारायण बडे चाव और आग्रह से उनसे रसियों को सुना करते थे। एक बार आपने स्वय एक सुरुचि पूर्ण रसिया बनाकर अपने मित्रों को सुनाया था।

तुम चौना, मोकू तारौ, जगत रन नाम तिहारौ।
बलि तारौ, प्रहलाद उबारौ तुम गजको सकट टारौ॥
तुम चोना मोकूँ तारौ॥*

समाचार पत्रों में कभी कभी आपके नाम पर कुछ मजाक छपता था तो उसे पढकर आप खूब हसते थे और उसे अपनी डायरी में नकल भी करलेते थे।

सत्यनारायणजी के विवाह के बाद श्रीयुत "मौजी" ने आपके विषय में "भारतमित्र" में लिखा था—

"सत्यनारायणजी अब काव्य क्यों महाकाव्य लिख सकते हैं, क्योंकि हरिद्वार में उन्हें कविता की कुइया मिल गई है। अब वह मजे में नित्य कविता उलीचा करें।"

* जब भरतपुर के वर्तमान महाराज को अधिकार मिले थे, पडितजी भरतपुर गये थे। उन्होंने उस अवसर के लिये यह एक रसिया भी बनाया था जो कई जगह गाया गया था।

बनि दुलहिन सी रही आज
भर्तपुर नागरिया।
द्वार द्वार में सिखना काढे,
जुरयौ उछाह समाज॥
भर्तपुर नागरिया॥

जाट लोग भरतपुर का उच्चारण भर्तपुर ही करते हैं।

श्रीयुत "गडबडानन्द" ने १८ जनवरी सन् १९१५ के 'प्रताप' में लिखा था—

"श्रीयुत श्रीधरजी की कविता के विषय में पूज्य "सरस्वती" सम्पादक की राय है—

"बाला मधू अधर अद्भुत स्वादुताई।
द्राक्षादु की मधुरिमामधु की मिठाई॥
एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम पागी।
तो श्रीधरोक्त कविता पढ़िए अनुरागी" ॥

"चौपटनन्दजी" इसी वजन की निम्नलिखित कविता कविरत्न सत्यनारायणजी के विषय में कर रहे हैं—

काली नई मिरच तीखन तीतताई।
डाला कुनैन ज्वर की अथवा दवाई॥
गाँजा अफीम विजया सब भाँति फीका।
देखो सुजान कविता कविरत्नजी का॥

८ फर्वरी के "प्रताप" में "गडबडानन्द" के किसी भाई बन्दका निम्नलिखित मजाक छपा था और सत्यनारायण ने इसे डायरी में नोट कर लिया था।

"सारन के पाण्डेजी को रज है कि रिश्तेदारी होने पर भी हिन्दी के इतिहास रचयिताओं ने एक लाइन से भी कम उनके विषय में लिखी है। ऐसे ही और लोग भी नाक भौंह सिकोड़ रहे हैं,लेकिन जो चाहते हों कि ससार उनकी प्रतिष्ठा करे तो उनको चाहिये कि

वे अपनी प्रतिष्ठा आप करें। शायद यही सोचकर अखिलानन्द महाराज और सत्यनारायण बाबा दुनियाँ के लाख नाना कहने पर भी कविरत्न होगये। सुनते हैं, अब भी नन्दकुमारदेव शर्म्मा को साहित्य-अष्टादशांग की पदवी मिलनेवाली है।'

कभी कभी पंडितजी बड़े आनन्द के साथ गाया करते थे—

पिया बिन नागिन कारी राति।
कबहुँ रैनि यह होति जुन्हैया डसि उल्टो ह्वै जाति॥

और कभी मजे में आकर यह भी गाते थे—

छोहरा मोर दे तीर कमान,पपीहरा काढ़ें लेतु पिरान।
पापी,
तु तो पीउ पीउ फिरकारै, मोहि मारै मारे मारै।

हँसी और मजाक

सत्यनारायणजी ख़ूब हँसते और हँसाते थे। मीठी मीठी चुटकियाँ लेना भी जानते थे। जब आप आगरे के चतुर्वेदी-सम्मेलन में सम्मिलित हुए तो मैंने मजाक में आपसे कहा—"पंडित आप सनाढ्य से चौबे ख़ूब बने"! सत्यनारायणजी ने उत्तर दिया—"आप भी तो कभी कभी पंडित तोताराम सनाढ्य के नाम से लिखा करते हैं इस लिए आप सनाढ्य हुए। बात यह हुई है कि एक चौबेजी सनाढ्य बन गये हैं और एक सनाढ्य ने चतुर्वेदी जाति की शरण ली है।"

मैंने कहा—"तब तो हर तरह से हमारी जाति का लाभ ही लाभ हुआ है। एक थर्डक्लास लेखक की जगह उसे एक कविरत्न

गया है।" मुस्कराकर पंडितजी चुप होगये। कभी कभी आप कहा करते थे—"चतुर्वेदी केदारनाथजी ने सनाढ्यों के पत्र का कुछ दिनों तक सम्पादन किया था। उसी का बदला आज मैं 'चतुर्वेदी' का सम्पादन करके देरहा हूँ।'

तुम्हारा ख़ानसामा

एक बार सत्यनारायणजी किसी मित्र को पत्र लिखने बैठे। आप ने सोचा कि पत्र के अन्त में कोई उर्दू शब्द लिखना चाहिए। बहुत कुछ सोचा, पर कोई अच्छा उर्दू शब्द याद नहीं आया। इसलिये आप ने अन्त में लिखा—"तुम्हारा खानसामा सत्यनारायण"। बहुत दिन तक "तुम्हारा खानसामा" का मजाक रहा। सत्यनारायणजी के मित्र श्रीयुत केदारनाथजी भट्ट व चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी अब तक इस मज़ाक की याद करके हँसा करते है।

निरभिमानता

भूपसिंह नामक एक सज्जन सत्यनारायण के साथी थे। चार पाँच वर्ष पहले सिढाकुर में पढे थे और पीछे वहीं पढाने भी लगे थे। वे भी कुछ कुछ कविता करते थे। उनकी कविता का नमूना एक सज्जन ने बम्बई में हमें सुनाया था।

'भूपसिंह भिनि भिनि भनन सितार बाजै,
बाजत तमूरा ताम ताम ताम तिनिनिनि।"

सत्यनारायण भूपसिंहजी को 'गुरुदेव' कहा करते थे, क्योंकि कविता करने में सत्यनारायण ने उनसे कभी-कभी सहायता ली थी।

सादगी और भोलापन

सत्यनारायण के व्यक्तित्व में ये दो बातें सबसे अधिक आकर्षक थीं। फैशन के चक्कर में वे कभी नहीं पड़े। उन्हें ग्रामीण होनेका गौरव था। उनके विद्यार्थी अवस्था के मित्र श्रीयुत दरबारीलालजी लिखते हैं —

"जब कभी मुझसे मिलते तो पहला प्रश्न यही होता था— "मैं अंग्रेजी पढ़ा हुआ तो नहीं मालूम होता?" इस पर मैं पूंछता—"इस प्रश्न से आपका उद्देश्य क्या है?' आप उत्तर देते—"आज कल बहुत से पढ़े लिखे जटिलमैंन' होते जाते हैं, पर मैं तो जटिलमैंनी से बचने के लिये सामान्य वस्त्र पहनता और सादगी से रहता हूँ'। गौरव की बात तो यह थी कि उनकी सरलता ओर सादगी में कोई कृत्रिमता नहीं आने पाती थी। उनके हृदय का भोलापन और वस्त्रों की सादगी से सोने और सुगंध का मेल हो गया था। कोरमकोर वस्त्रों की सादगीवाले तो आजकल हजारों ही पाये जाते हैं, लेकिन उनमें सत्यनारायणजी की हार्दिक सरलता का शतांश क्या, सहस्त्रांश भी नहीं मिलेगा। बात यह है कि जैसे वे भीतर थे, वैसे ही ऊपर।"

श्रीयुत बद्रीनाथजी भट्ट ने "सरस्वती" में लिखा था—

"सत्यनारायणजी निरभिमानी इतने थे कि एक रात को इस नोट के लेखक के मकान पर टेसू के गीत गानेवाले गँवारों के साथ बेधड़क बैठकर आप भी उनके सुर में सुर मिलाकर और एक कान पर हाथ रखकर जोर जोर से तान अलापने लगे।"

सत्यनारायण और एण्ड्रूज

सत्यनारायण की मृत्यु के बाद ६ वर्षों में मुझे बीसियों साहित्य-सेवियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन मुझे सत्यनारायण जैसा भोलापन केवल एक ही मनुष्य में दीखा है, यानी भारत भक्त एण्ड्रूज में। सत्यनारायण कवि थे। मि० एण्ड्रूज भी कवि हैं। सत्यनारायण सांसारिकता से कोसों दूर थे, मिस्टर एण्ड्रूज को दुनियवीपन छू भी नहीं गया। सत्यनारायण ने निस्स्वार्थ भाव से साहित्य-सेवा और समाज सेवा की। मिस्टर एण्ड्रूज भी ऐसा ही कर रहे हैं। भालेपन में दोनों को सगे भाई समझना चाहिये। सत्यनारायण को धोखा देना कोई मुश्किल बात नहीं थी और मिस्टर एण्ड्रूज को धोखा देना आसान है। मुझे दोनों के ही संसर्ग में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मैं कह सकता हूँ कि दूसरों को उत्साहित करने में, किसी के अवगुण को न देखकर उसके गुण ही गुण देखने में, हृदय की कोमलता और प्रेमपूर्ण स्वभाव में सत्यनारायण और एण्ड्रूज समान ही हैं। सत्यनारायण के स्वर्गवास के १८-२० दिन बाद ही मुझे मिस्टर एण्ड्रूज से साक्षात् परिचय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मिस्टर एण्ड्रूज के निष्कपट और प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखकर मैंने दिल में सोचा—'अहा! क्या ही अच्छा होता, सत्यनारायणजी जीवित होते और एण्ड्रूज से मिलते!' यदि मैं चित्रकार होता तो सत्यनारायण और एण्ड्रूज' के हृदयालिंगन का चित्र खींचता और

चित्र के नीचे लिखता—"पूर्व और पश्चिम का मिलन !' दुर्भाग्यवश सत्यनारायणजी की जीवित अवस्था में मैं उन्हें एण्ड्रयूज साहब से नहीं मिला सका। पर सत्यनारायणजी के स्वर्गवास होने पर मेरी प्रार्थना पर मि० ऐण्ड्रयूज सत्यनारायण के तैल चित्र का उद्घाटन संस्कार करने के लिए फीरोज़ाबाद पधारे थे और यह जीवनचरित्र भी भारत-भक्त एण्ड्रयूज के ही अर्पित किया गया है। मुझे विश्वास है कि सत्यनारायण की स्वर्गीय आत्मा इससे सन्तुष्ट होगी।

चरित्र पर एक दृष्टि

इस विषय में सत्यनारायणजी के मित्र श्रीयुत गुलाबरायजी एम०ए०ने जो कुछ लिखकर भेजा है वह संक्षेप में सत्यनारायणजीके चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसलिये उसे हम यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

"यशेच्छा महानपुरुषो की अन्तिम कमजोरी है। काव्य के उद्देश्यों में यश पहला स्थान पाता है ('काव्य यशसे अर्थ कृते' इत्यादि)। पं०सत्यनारायणजी में न यशेच्छा थी और न धनेप्सा। इस लिए वे वर्तमान कवियों में रत्नरूप थे। उन्होंने जो कुछ लिखा 'स्वान्त सुखाय' लिखा। सच्ची कला का उदय तभी होता है जब उसका अनुशीलन किसी बाहरी अर्थ या प्रयोजन से नहीं होता। परीक्षा काल में विद्यार्थियों की सारी शक्तियाँ पाठ्य पुस्तकों में केन्द्रस्थ हो जाती हैं, किन्तु कविरत्नजी को "धोये धोये पातन्त की" शोभा वर्णन में परीक्षा की भी खबर न रही ! इससे अधिक और कविता

का प्रेम क्या हो सकता है ? पंडितजी ने विश्व-विद्यालय की परीक्षा में फ़ेल होकर कविता की सच्ची परीक्षा में उच्च पद पाया।

उनके चहरे पर सन्तोष और शान्ति की एक अलौकिक छटा रहती थी। वास्तव में वह इस कठोर संसार के योग्य न थे। इसी लिये वह मृत्यु के छाया पथ द्वारा शीघ्र ही अनन्त सुख और शान्ति के लोक को प्रयाणकर गये। जितने दिन रहे,उतने दिन इस संघर्षण शील संसार को शान्ति पाठ पढ़ाते रहे। यद्यपि उनका जीवन कष्टमय था, तथापि वे सहनशीलता के माधुर्यसे निकटस्थ लोगों के माधुर्य्य में आनन्द की झलक डालते रहे। आपने फ़ैशन के केन्द्र में,सादगीके जीवन का,अपने उदाहरण से,प्रतिपादन किया। दूसरों के अनादर से कभी रुष्ट नहीं हुए। यदि कभी किसी ने उपहास किया तो स्वयं ही उस उपहास में शामिल हो गये। रोष को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। दुखने कभी उन पर जय नहीं पायी। बढ़ती हुई यश की लहर ने उन्हें कभी मदोन्मत्त नहीं किया। कविता से नितान्त अनभिज्ञों को भी गुरुपद देने को तैयार रहते थे। अरसिकों तक को कविता सुनाने में संकोच न था। वह सबको अपने से बड़ा ही समझते थे। आगरे में कोई ऐसी सभा न होती जिसका मूल्य उनकी कविता द्वारा न बढ़ जाता हो। ऐसा कोई पत्र न था जिसके सम्पादक को उन्होंने अपनी कविता से आभारी न किया हो। नगर में ऐसा कोई विद्यार्थी न था जो उनका मित्र न हो। उन्होंने अपनी विद्या और कवित्व शक्ति को विनयगुण से गौरवान्वित किया था। सत्यनारायणजी विनयशीलता, निरभिमानता

और हास्य तथा माधुर्य्यमय करुणा की जीवित मूर्ति थे। विशेषत करुणरस की कविता सुनाते समय कविता के भाव उनके मुख पर अंकित हो जाते थे और वे करुण-रस की साक्षात मूर्ति बन जाते थे। समय की अनन्तता में उनको पूर्ण विश्वास था। उनके जीवनादर्श ने महात्मा तुल्सीदासजी के निम्नलिखित पद को अपनाया था।

कबहुँक हैं। यहि रहनि रहेंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते सन्त सुभाव गहैंगो॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहैंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहैंगो॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहैंगो।
विगत मान सम शीतल मन परगुण नहिं दोष कहैंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहैंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भक्ति लहैंगो॥"

श्रीयुत गुलाबरायजी के कथन से मैं भी पूर्णतया सहमत हूँ। यहाँ पर मैं यह कह देना चाहता हूँ कि सत्यनारायणजी की विद्वत्ता व कवित्व शक्ति ने मेरे हृदय को उतना आकर्षित नहीं किया जितना उनके सरल स्वभाव, निष्कपट व्यवहार और सहृदयता ने। शान्ति आश्रम मथुरा में स्वामी रामतीर्थ के सामने अपनी कविता पढ़ते हुए सत्यनारायण मेरे हृदय को उतना आकर्षित नहीं करते जितने मिढाकुर के मदर्से में—

"देखो अँगरेजन को खेल, निकारयो माटी में ते तेल।
जरै जैसे धिय कैसो दिवला!"

गाते हुए सत्यनारायण। 'कुली प्रथा' या 'कामागाटामारू-दुर्घटना' के लिये शोकोत्पादक कविता पढनेवाले सत्यनारायण के स्वर से मेरी हृदय तन्त्री उतनी प्रतिध्वनित नहीं होती, जितनी गृहजीवन से पीडित "भयो क्यों अनचाहत को सग" गानेवाले साश्रुनयन सत्यनारायण के करुणोत्पादक शब्दों से होती है। सत्यनारायण की वह मूर्त्ति, जब कि वे आगरा प्रान्तीय सम्मेलन की स्वागत-कारिणी सभा के प्रधान की हैसियत से अपनी विद्वतापूर्ण स्पीच पढ रहे थे, मुझे स्मरण नहीं आती, लेकिन मधुर मुसक्यान के साथ ठेठ व्रजभाषा बोलने वाले सत्यनारायण की स्मृति में मैंने कई बार आँसू बहाये है। इसी प्रकार सर्वसाधारण द्वारा प्रशंसित उनकी "श्रीसरोजिनी षट्पदी" ने मेरे मनको उतना प्रफुल्लित नहीं किया जितना "कली री अब तू फूल भई" नामक उस कविता ने किया है जो एक प्राइवेट पत्र में किसी को भेजी गई थी। लोग कहते है कि करुणा रस की कविता करने में सत्यनारायण सिद्धहस्त थे, उत्तर रामचरित के करुणामय दृश्यों का अनुवाद उन्होंने बडी सफलता के साथ किया है, लेकिन मुझे उनका कोई भी पद्य इतना करुणाजनक नहीं दीख पड़ता जितना उनके दुःखान्त जीवन-नाटक का अन्तिम पट! बात तो असल में यह है कि Satyanaryan was much greater as a man than as a poet सत्यनारायण जिस कोटि के कवि थे, उससे कहीं अधिक ऊँचे दर्जे के वे मनुष्य थे।

ग्रामीण मित्र क्या कहते हैं

सत्यनारायणजी का एक छोटा सा फोटो लेकर मैं धाधूपुर गया था। उसे मैंने वहाँ के गँवार किसानों को दिखलाया। देखकर उनकी आँखों में आँसू भलक आये। वे कहने लगे—"हाँ, महाराज जे तो ऐन मेन सत्यनारायण ही बैठे हैं।" एक ने कहा—"का कहें महाराज! हम चारि आदमी बड़े मित्र हे सो हमारी तो मानों एक भुजाई टूटि गई।" दूसरा बोला—"हल चलाउते बखत कुश्रन पै राम लेत भये, खेत पै, खलिहान में, वे हमेस हमारे ई साथ रहते।' तीसरा कहने लगा—"सत्यनारायण पैलें हमको अपनी कविता सुनाइ देते श्रोर जब हम कहि देते कि ठीक है तब वे वाइ छपावइवे भेजते। बाकी तो रहि-रहि कें यादि आवति है।" चौथे ने कहा—"हम कैसें भूलें। जब सावन आवते, तब सत्यनारायण 'अहा' कहिकें "घिरि श्राउरी बदरिया कारी बरसन वारी 'गाइबे करते। खेत में बैठे कबित्त बनाइबे करते।"

पाँचवाँ बोला—"हम का कहैं, धाधूपुर को तो भाग ई फूट गयौ। बड़ौ साहिर (शायर) आदमी हो, ताई ते वाकौ नाम दूरि दूरि फैलि गयौ।"

कायर कूर अनिष्टा नारी चुगल मरी काऊ जानी ना।
अरु कौआ कुत्ता किरिमि गिजाई इनकी मौत बखानी ना॥
मरिवौ जगह सराहैं राजा साहिर सूर सती कौ।
--- इन देखौ करन जती कौ॥

सो महाराज वु तौ साहिर* आदमी रह्यौ।'

सत्यनारायण का चरित्र चित्रण इससे उत्तमतर रीति से भला कौन कर सकता है?



* शायर—कवि

सत्यनारायणजी की कुछ स्मृतियाँ



श्रीयुत भगवन्नारायणजी भार्गव, वकील (झाँसी) लिखते हैं —

"मैं सन् १९१० की जुलाई में सेन्टजान्स कालिज में शिक्षा प्राप्त करने गया था। वहीं पर सत्यनारायणजी का प्रथम दर्शन हुआ था। एक स्वदेशी बंडी पहने, गले में अरुण दुपट्टा, देशी टोपी और देशी धोती। वाह! कैसी मनोहारिणी स्वदेशभक्ति की मूर्ति थी! मैं भार्गव बोर्डिङ्ग हाउस में रहता था। सप्ताह में एक बार तो अवश्य ही दर्शन दिया करते थे। जब हमलोग भोजन करने बैठते थे तब वे अपनी पुरानी गाथा सुनाया करते थे। भोजन करते समय यह अवश्य कह लेते थे कि भाई हम तो आधे भार्गव हो गये। × × आप कृष्ण के भक्त थे। प्राय अपनी कविताओं द्वारा उनको बड़े गहरे उलाहने दिया करते थे। मेरी ईश्वर प्रार्थना आदि देखकर कहा करते थे कि तुम ईश्वर का पीछा छोड़ो और जो उनसे न बनती हो तो माखन मिश्री चुराने और खानेवाले की वचनावली सुनावो। × × आप मुझको पत्र भी कविता में लिखते थे। उनमें बातें यद्यपि साधारण होती थीं पर कभी कभी उनमें नवीन भाव भी आ जाता

था। एक बार मैंने पत्र भेजा, परन्तु जिस दिन धाँधूपुर डाक जाती थी उसके एक दिन बाद मैंने उसे डाक में डाला, इस कारण एक सप्ताह में मिला। आपने प्रत्युत्तर दिया—

"प्रियवर पायो पत्र तुम्हारो सब प्रकार सुख मूरा।
किन्तु मिल्यो है दिना पिछारी डाक भई प्रतिकूल॥"

आप प्रायः गणागण-शुभाशुभ शब्द का भी विचार रखते थे और यह भी आपका विश्वास था कि कविता के भाव का प्रभाव कवि पर भी पड़ता है। जब आपके गुरु बाबा रघुवरदास का सहसा देहान्त होगया तो आपने मुझसे कहा—"मुझको यह आशंका न थी कि गुरुजी का देहान्त अभी हो जायगा। कदाचित यह उस छन्द का प्रभाव है जो मैंने उत्तर-रामचरित्र के अनुवाद में लिखा है। रामचन्द्रजी सीताजी के प्रति कहते हैं—"हा हा देवी फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावे"। आप कहते थे कि गुरुजी बिन जगत् शून्य सा ही हो गया। एकबार "सरस्वती" में बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त की एक कविता निकली। उसका पहला पद यह था—"नर हो न निराश करो मन को" कविरत्नजी बोले कि ऐसा लिखना ठीक नहीं, क्योंकि पढ़ने में यह पद ऐसा भी आ सकता है, न रहो न निराश करो मनको!"

जब आपको राजयक्ष्मा का रोग हो गया था और बहुत कष्ट था तब भी आपकी काव्यस्फूर्ति जैसी की तैसी बनी थी। उन्हीं दिनों आपने लिखा था—

"वस श्रम, नहिं जात सह्यो ।
विपुल वेदना विविध भाँति जो तन मन व्यापि रह्यो ॥"

एक बार आप संक्रान्ति पर गंगा स्नान करके इक्के में लौट रहे थे। सड़क की ऊँचाई निचाई के कारण इक्के में बहुत धचके लगते जाते थे। उसी समय इक्के में बैठे बैठे आपने यह पद्य लिखा था—

"दया ऐसी कीजे भगवान ।
जासों हिन्दू जाति करे यह प्रेम गङ्ग असनान ॥

मैंने आपसे कई बार झाँसी पधारने को कहा था। पर आप यही कह दिया करते थे—"जब झाँसी के झाँसे में आजाऊँगा तब वहाँ भी पहुँच जाऊँगा। परन्तु आप तो किसी दूसरे के ही झाँसे में आगये और निष्ठुर होकर चल दिये ! किसी की परवाह भी न की !"

श्रीयुत केदारनाथजी भट्ट-एम० ए० एल०-एल० बी० (आगरा)

लिखते हैं —

"सत्यनारायण से मैं प्रायः सिड़ी कहा करता था और जिस भाव से मैं कहता था उसी भाव से इस उपाधि को वह ग्रहण कर लेता था। अब ऐसा शुद्ध हृदय,जो दर्पण के दर्प को लज्जित करने वाला था, कहाँ मिल सकता है, यह मैं नहीं जानता, ईश्वर ही जाने। उसका पूरा जीवन मनुष्य रूपी सेवा समिति का

आदर्श था। उसके गुण मैं आपसे क्या कहूँ। आप तो स्वय उससे मिले थे। मेरा जी भर आया है, आखें तर हो आई हैं! लीजिये इस कागज पर भी एक बूंद आंसू गिरा! यही आप को इस समय उसकी स्मृति में भेजता हूँ!!

श्रीमान पूज्य प० श्रीधर पाठक (प्रयाग)

ने मुझे अपने एक पत्र में लिखा था—

"प्रियवर सत्यनारायण की असामयिक मृत्यु से मुझे जो आन्तरिक दुःख हुआ है भाषा द्वारा पूर्णतया प्रकट नहीं किया जा सकता। मैं उनको उनकी १७-१८ वर्ष की वयस से जानता था। प्रथम परिचय पत्रालाप द्वारा हुआ था। कुछ काल के अनन्तर प्रत्यक्ष सलाप और समागम से वह पुष्टतर हुआ और फिर स्वत अधिकाधिक प्रगाढता प्राप्त करता गया। यद्यपि अभिन्न मैत्री के एकान्त तट तक कभी नहीं पहुँचा। समागम भी लम्बे लम्बे अन्तर से हुआ था, अत मुझे उनकी मानसिक अन्तर्वृत्तियों का पूरा पता न लग सका। मुझे सत्यनारायणजी की कवित्वशक्ति की उत्तरोत्तर उन्नति देख हार्दिक आनन्द होता था। वह एक बड़े होनहार पुरुष पुगव थे और यदि पूर्ण "पुरुषायुष जीविता" प्राप्त करते तो अपनी असाधारण शक्ति द्वारा स्वदेश की अनेक प्रकार से सेवा कर जाते। मेरी बातो को वह ध्यान से सुनते थे और सलाहों को प्राय काम में लाते थे। उनकी स्वाभाविक शालीनता उन्हें सदा सुजनोचित सौम्यता से

भूषित रखती थी। उनकी प्रतिभा उनसे साहित्य सेवा का उत्कृष्ट काम लेती थी। उन्हें मैं अपने आत्मीयों में समझता था। गत हेमन्त में जब उनका प्रयाग आगमन हुआ था, उनके "मालतीमाधव" के कुछ अंश के श्रवण का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ था। उनका उच्च कोटि का कवि होना उनकी रसीली रचनाओं से निर्विवाद निर्धारित है। जब तक संसार में हिन्दी भाषा का अस्तित्व है, सत्यनारायणजी की कविता का शिष्ट समाज में दूसरे सत्कवियों की कविता के समान ही समादर रहेगा।

श्रीयुत लोचनप्रसादजी पांडेय (बालपुर)

लिखते हैं—"आगरा पहुँचकर हम बड़ी कठिनाई से श्रीयुत कुँवर हनुमन्तसिंहजी रघुवंशी के निवासस्थल का पता लगा पाये। पहुँचतेही हमने प्रार्थना की कि कविरत्नजी के पुन्यदर्शन कराने की व्यवस्था होनी चाहिये। कुँवरजी महोदय ने हमारी विनती पर उचित ध्यान दिया। रात्रि को कोई सात बजे के समय कविरत्नजी ने हमारे डेरे पर पधारकर हमें कृतार्थ किया। दिव्य दर्शन हुए—खूब दर्शन हुए! नेत्र शीतल और पवित्र हुए। उनकी सादगी, सरलता, सहृदयता और शीलता देखकर हम आश्चर्य्य और हर्ष-मुग्ध होरहे।

जब जबलपुर-सम्मेलन में कविरत्नजी के दर्शन न हुए थे तब हम बड़े निराश हुए थे कि अब उनके कोकिलकलकंठ से कलित गान श्रवण का सुयोग प्राप्त करना कठिन है। पर यह हमारी निराशा जाती रही। किंचित काल सामान्य शिष्टाचारकी बातें होती

रहीं। फिर तो हमें अर्धनिमीलित नेत्र, चित्ताकर्षक मुखाकृति एवं हर्ष मुद्रा संयुक्त एक नितान्त हिन्दू वेशभूषाधर सज्जन की स्वर माधुरी ने मंत्रमुग्ध सा बना दिया। उस विविध भाव परिपूरित उदात्त सरस काव्यामृत के सहित आल्हाददायिनी नाद लहरी हृदय एवं कर्णकुहर को एक साथ झंकारित करती हुई अभूतपूर्व सुखानुभव कराने लगी। हमने अपने को धन्य एवं भाग्यवान जाना। स्वरचित सङ्गीत को ऐसे सुस्वर एवं सफलता से गायन कर सकने की कला प्राप्त करने पर हमने कविरत्नजी को बधाई दी, क्योंकि यह बात किसी बिरले भाग्यधर के भाग्य में घटित होती है। अस्तु,दोघंटे का समय कहते-कहते बीत गया। हम बाहर फाटक तक कविरत्न को पहुँचाने गये। उनका वह अमृतमय मधुर ब्रजभाषा भाषण तथा गाढतर स्नेहालिङ्गन आजन्म हम नहीं भूलसकते। × × ×

दूसरे दिन कोई ६ बजे के समय हम लोगों का पुनर्मिलन हुआ। नाना प्रकार की साहित्य चर्चा हुई। खड़ीबोली, ब्रजभाषा, आधुनिक गद्य-साहित्य, पद्य साहित्य, सुरुचिपूर्ण सङ्गीत आदि पर बातें होती रहीं। फिर कविरत्नजी हमलोगों को अपने आगरे के "विश्राम निलय' के दर्शन कराने ले चले। वहाँ भी अमित आनन्द रहा। कविता-पाठ, सङ्गीत गान, काव्य समालोचना क्रम क्रम से सब का आदर हुआ। स्वअनुवादित "मालतीमाधव" नाटक के उत्तम उत्तम स्थलों के अनुवाद आपने पढकर हमें सुनाये। स्वरचित पुस्तक तथा "चतुर्वेदी" की एक जिल्द और कुछ प्रतियाँ उपहार में प्रदान करने की कृपा की। हमारे लिये स्नान का समय टालदिया,

"भोजन पीछे होता रहेगा ।यह कहकर हमें कथारस में प्लावित रखा। कहाँ तक कहें, हमारे जैसे समान्य व्यक्ति के प्रति प्रथम साक्षात के समय ही ;जैसी आत्मीयता और विमल बन्धुतापूर्ण प्रेम भाव का परिचय उन महान आत्मा ने दिया वह उनके स्वर्ग सुलभ मानव दुर्लभ स्वभाव एव देवत्व का पूर्ण परिचायक है।

उनसे विदा होकर हम लोग अपने वास स्थलपर तो आगये पर मन यही चाहता था कि कविरत्नजी के साथ हम कुछ काल और रहते एव उनके 'धांधूपुरा' तथा कालिन्दी-कूलस्थ, कीर कोकिल केका केकी के कलगान से मुखरित सुरम्य कु ज पु ज तथा वनकानन के दर्शन से अपूर्व आल्हाद लहते। पर वह सुयोग अब कहाँ!"

श्रीयुत भवानीशंकरजी याज्ञिक, भरतपुर लिखते हैं –

कविरत्नजी साँस के रोग से पीडित थे और अपनी चिकित्सा कराने के लिये ही काकाजी (पूज्यपाद पडित गयाशङ्करजी बी० ए०)के आग्रह से भरतपुर आये थे। उन दिनों उनकी दशा बहुत शोचनीय थी। महीनों से खाँसी के कारण रात को सोये नहीं थे। कविरत्नजी नींद न आने के कारण अपना मन कविता गानमें लगाया करते थे। उनका लगभग रातभर जागरण सा हुआ करता था। इस जागरण को कविरत्नजी 'नाइट स्कूल' कहा करते थे। उनका इलाज भरतपुर में वैद्य बिहारीलालजी तथा डा० ओंकारसिंहजी ने किया था। परन्तु फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। अन्त में एक महात्मा ने कविरत्नजी को बबूल की छाल तथा उसके गोंद की एक दवाई बताई

जिससे उन्हें शीघ्र ही आश्चर्यजनक लाभ हुआ। इस ओषधि की कविरत्नजी बहुत बडाई किया करते थे। यहाँ तक कि इसे उन्होंने प्रयाग से प्रकाशित होनेवाले 'विज्ञान' पत्र में भी छपवा दिया था। एक दिवस तो बबूल के गुण गान में निम्नलिखित दोहा भी बनाकर मुझे दिया था।

कीकरतू कण्टक सहित, पर गुन गन भरपूर।
निज पञ्चाङ्ग प्रभावसों,करत रोग सब दूर॥

उनको गुजराती भाषा और भोजन बहुत रुचिकर था। जब हममें से कोई उनसे व्रजभाषा में बोलता तो कविरत्नजी हमको गुजराती बोलने को बाध्य करते थे। उन्होंने गुजराती बोलना कुछ कुछ सीख भी लिया था। मेरे एक गुजराती पत्र का उत्तर कविरत्नजी ने गुजराती मिश्रित खडी बोली में दिया था। सेन्टजान्स कालिज के प्रोफेसर श्रीयुत कान्तिलाल छगनलाल पाण्ड्या ने उन्हें उत्तर-रामचरित का द्विवेदी मणिभाई नभुभाई बी० ए० कृत गुजराती भाषान्तर भेंट किया था, जिसको उन्होंने गुजराती भाषा सीखने के लिये भरतपुर में कई बार पढा था। नागरी लिपि में प्रत्येक अक्षर पर एक आड़ी लाइन लिखनी पडती है जिससे कविरत्नजी बहुत घबडाते थे। इसी कारण उन्होंने गुजराती लिपि सीखी। "मालतीमाधव' के अनुवाद के छन्द उन्होंने संस्कृत "मालतीमाधव" की पुस्तक के कोने पर लिखे हैं उसकी लिपि गुजराती मिश्रित नागरी है।

आप को ज्ञात होगा कि पूज्यपाद काकाजी उनके विवाह से सन्तुष्ट न थे। काकाजी ने कविरत्नजी के अन्य मित्रों को भी इस

उन ग्रन्थों के पढने से उनकी कविता शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इस बात को उन्होंने कई बार स्वीकार भी किया था। काकाजी की इच्छा थी कि 'भरतपुर राज के कवि' नामक एक पुस्तिका कविरत्नजी की सहायतासे बनाई जाय। उन्होंने "मालतीमाधव"का अनुवाद मुख्यत भरतपुर ही में किया। कभी कभी किसी श्लोक में जो कठिनता प्रतीत होती थी वह राज पण्डित श्रीयुत गिरिधारीलालजी से पूँछ लिया करते थे। 'मालतीमाधव' के अनुवाद हमें उन्हें कविवर सोमनाथ कृत 'माधव विनोद' से बहुत सहायता मिली थी। इस बात को कविरत्न जी ने स्वयम् "मालतीमाधव' की भूमिका में लिखा है। शोक की बात है कि राज कवि सोमनाथ कृत "माधव विनोद" का कविरत्नजी की मृत्यु के बाद से पता नहीं। यह अलभ्य ग्रन्थ पंडितजी की निजी पुस्तकों के साथ था और वहीं से लापता है। उनकी अकाल मृत्यु के कारण 'भरतपुर राज्य के कवि' शीर्षक पुस्तक अधूरी ही रह गई है।

एक बार हम लोग कविरत्नजी को यज्ञोपवीतके एक उत्सव में अनूप शहर (जिला बुलन्दशहर) में गङ्गा तट पर एक रम्य स्थान में ले गये थे। यह बात १९१५ ई० (फर्वरी) की है। वहाँ अतिथि स्वागतार्थ निम्नलिखित अडिल्ल छन्द की गुजराती कविता पढी गई थी।

महमानो ओ व्हाला पुन पधार जो।
तम चरणे थम सदन सदैव सुहायजो॥
करजो माफ हजारों पामर पाप जो।
दिनचर्य्या माँ प्रभु पासे पण थाय जो॥

उन्नति गिरिश्रङ्गोना वसनारात में।
उतरवा दृढ़ प्रहेयो पुण्य प्रभाव जो॥
शुश्रूषा सारी ना हमने आवडी।
लेश न सीधो ललित उरों नो लाभ जो॥

इसके उत्तर के लिये उनसे आग्रह-पूर्वक प्रार्थना की गई। कविरत्नजी ने इसका उत्तर इसी छन्द में बनाकर गुजराती की गरबी चाल पर गाया। उनका उत्तर सरसता तथा मधुरता से पूर्ण है।

सुजन सदाही दया स्वजन पर कीजियो।
जोरि जुगल कर माँगत यह वर दीजियो॥
प्रिय प्रेमीले बड़े आप सरदार हो।
उच्च विचार सुसज्जित परम उदार हो॥
करी हमारी जो शुश्रूषा है घनी।
किन्तु तुम्हारी हम पै नहिं सेवा बनी॥
लहि गङ्गा को तीर भुवन मन मोहिनो।
प्रकृति छटा मन भावन पावन सोहिनो॥
बड़ी असुविधाएँ जो जो तुम्हने सही।
दे कोटिन धन्यवाद उऋण तेऊ नहीं॥
हम लोगन की लीला चित न विचारियो।
आप बड़े सत अपनी ओर निहारियो॥

इसका उन्होंने गुजराती-अनुवाद भी कर दिया था जो बहुत कुछ अशुद्ध था। आप के जानने के लिये दो चार शुद्ध चरण, जो मुझे याद हैं, लिखे देता हूँ।

प्रिय प्रेमीला पूज्य आप सरदार हो"
उच्च विचार सुसज्जित परम उदार हो।
आज हमारी कीधी शुश्रूषा घणी।
किन्तु न हम थी किंचित तम सेवा बणी॥

मुझको भी कविता से कुछ रुचि है और मैंने सत्यनारायणजी से कई बार कविता सिखाने के लिये प्रार्थना की, किन्तु मुझसे यही कहा कि कविता के कुचक्र में पड़ने से काि पढ़ाई को बहुत क्षति पहुँचती है। वे अपने बी० ए० की पर अनुत्तीर्ण होने का यही कारण बताया करते थे।

अधिक क्या लिखूँ ?

कविता कानन ललित कुंजकी कोकिल प्यारी।
कलित कंठ की कल कल कूक सुकवि मुदकारी॥
ललित कवित की लता लहलही नित लहराती।
रचना चारु विचित्र महक मंजुल महकाती॥
ब्रज भाषा मधु मधुर मत्त मधुकर सुखदाई।
नवजीवन की जग में जगमग ज्योति जगाई॥
हिन्द भाल की बिन्दी हिन्दी मात दुलारे।
काव्य रतन गर्भा के शुचि कविरतन पियारे॥
जाहि 'सूर' ने नवरस जलसों स्नान करायो
'हरिश्चन्द्र' जहि रुचिकर चन्दनचारु लगायो॥
गङ्ग नीर को अर्घ्य देय जहि 'गङ्ग' रिझायो।
जाको षोडश पूजा करि 'केशव' सुख पायो॥

'नन्द' 'विहारी' 'भूषण', भूषण साज सजायो।
जिन पद पदमनि 'तुलसी', तुलसी दलहि चढ़ायो॥
जिह कर 'पदमाकर' निजकर, आरती उतारी।
ता ब्रजवाणी देवी के तुम गुणी पुजारी॥
सुन्दर सरल सुभाव सुधासम रस बरसायो।
कपट कुटिलता हीन प्रेम-पूरित मन पायो॥
हिन्दी हित निष्कपट कठिन शुभ काज तिहारो।
प्रेरत हिन्दी प्रति नित चञ्चल चित्त हमारो॥
शुचि आदर्श तुम्हारो काज हमारे सारें।
हिन्दी प्रति हमहूँ निज तन मन धन सब वारें॥
जगव्यापी जीवन रण महँ हम विजयी होवें।
दुखित दीन बल हीन छीन हिन्दी दुख खोवें॥

श्रीरामनारायणजी चतुर्वेदी बी० ए० (प्रयाग)

लिखते हैं —

"मुझे सत्यनारायणजी का दर्शन बन्धुवर श्रीअयोध्याप्रसादजी की कृपा से हुआ था। माई स्थान नामक मुहल्ले में एक बड़े योग्य महात्मा सारस्वत ब्राह्मण, जिनका नाम सोहनजी था, रहा करते थे। उनके पौत्र प० ब्रजनाथ शर्मा सत्यनारायणजी के परम सुहृद थे। सोहनजी एक तरह के त्यागीजन थे। उनपर लोगों का बड़ा विश्वास था। आदमी गम्भीर और विचारवान थे। उनके दर्शन के हेतु मैं प्राय जाया करता था। यहाँ सत्यनारायणजी की भेंट हो जाया करती थी। सत्यनारायणजी का काव्य प्रेम देखकर उनसे

मेरी विशेष प्रीति उत्पन्न हो चली। जब कालेज से उनको अवकाश मिलता वे कृपा किया करते थे और वार्तालाप का आनन्द रहता था। जब कभी वे आते, कविता सम्बन्धी विषयों पर वार्ता करते थे। प०श्रीधर पाठक के "ऊजड़ग्राम" और एकान्तवासी योगी की जो प्रशसा फ्रैडरिक पिनकाट ने की थी, उसपर हँसते थे और उनके निर्मित 'घन विनय' की बड़ाई करते थे। सत्यनारायणजी ने "ऊजड़ ग्राम" को अँग्रेज़ी पद्योंमें थोड़ा सा अनुवाद करके मुझे सुनाया भी था, जो किसी प्रकार न्यून न था। तब हमने उनसे निवेदन किया कि जिसका एक अनुवाद हो चुका है उसमें श्रम न करके मेकाले के Lays of ancient Rome का अनुवाद कीजिये। सत्यनारायणजी ने यह सकल्प ठाना और उसे पूर्ण भी किया। वह इस समय एफ० ए० में पढते थे और मेकाले की 'हारेशस' नामक पुस्तक उनके पद्य प्रकरणों में थी। उसी का अनुवाद उन्होंने किया था। उनके सस्कृत के कोर्स में कालिदास का रघुवंश भी था। उसके द्वितीय सर्ग के कुछ पद्यों का अनुवाद उन्होंने मुझे सुनाया था जो अच्छा था। "श्यामाय मानानि वनानि पश्यन" वाले श्लोक का अनुवाद जो उन्होंने किया था, ठीक न था। उसपर मैंने तीव्र आलोचना की। तब उन्होंने दूसरे प्रकार से यथार्थ अनुवाद किया। एक पुस्तक मैंने लिखी थी जिसका नाम था—"कामिनी कन्त" उसकी इस पंक्ति पर वह बहुत प्रसन्न हुए थे।

"रूपवती, पर्वती, सती युवती एक नागर।
नेहनटी पतिहटी, लटी, झटपटी मिटी मर॥"

इसमें एक पंक्ति का अनुवाद उक्त कवि ने इस प्रकार किया था—

का सोक सों अधिक होति, उर ज्वाल हमारे।"

सत्यनारायणजी के अवसान पर क्या कहा जाय?—

"बागे आलम में उगा था,
कोई नरवने उम्मेद।
और यास ने काट दिया
फूलने फलने न दिया॥"

स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी

ने अपने १२।८।१६ के पत्र में मुझे लिखा था—

"मेरा सत्यनारायणजी का परिचय पहले पहल सन् १९०६ में किसी समय हुआ था। एक दिन जब मैं प्रयाग में था, घूम कर सायंकाल के समय, गृह पर आया तो निम्नलिखित शब्द एक स्लिप पर लिखे हुए मिले—

"निरत नागरी नेह रत रसिकन ढिँग विश्राम।
आयो तुव दरशन करन सत्यनारायण नाम॥

रात भर दर्शन की बड़ी अभिलाषा रही। प्रात काल आप फिर पधारे, तबसे अन्तकाल तक उनकी कृपा मुझ पर बनी रही। इतना अधिक माधुर्य्य किसी भी आधुनिक कवि की रचना में मैंने नहीं पाया और न इतनी शीघ्रता से इतनी अच्छी कविता करते मैंने और किसी को देखा है। × × × ब्रजभाषा का इतना प्रतिभा

शाली कवि शीघ्र फिर कोई होगा इसमें सन्देह मालूम होता है। जब कभी आप खडीबोली की ओर झुकते थे मुझे बडा बुरा मालूम होता था। कारण यह था कि खडीबोली के अनेक तुकबन्द हैं लेकिन व्रजभाषा के वे ही अकेले आधार और कर्णधार थे'।

श्रीयुत कन्नोमलजी एम्० ए० जज (धौलपुर)

ने १।१२।१८ के पत्र में लिखा था—

"सत्यनारायणजी से मेरा खूब परिचय था। वह मुझ पर बडी कृपा करते थे। जब कभी नयी कविता तैयार करते थे तो मुझे सुना देते थे। कभी कभी तो सुनाने के लिये धौलपुर तक आने का कष्ट उठाते थे। पडितजी बडे सज्जन थे। उनकी सादगी पर सभी मोहित थे। उनकी कविता बडी सरस और मनोहर होती थी। उनके सुनाने का ढङ्ग निराला ही था। आप ऐसे शान्त स्वभाव और उदारचित्त थे कि कभी किसी की बात पर नाराज नहीं होते थे और न आपको कभी किसी की शिकायत करते सुनागया। आप सदैव प्रसन्नचित्त रहते थे और जिस समय किसी के समीप जाते थे तो उसको आनन्दमय कर देते थे। देहावसान के थोडे दिन पहले पडितजी एक प्रिय मित्र के साथ आये थे। "*मालती-माधव*" नाटक के अनुवाद करने में उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पडा था उनका हाल कहते थे। मै उस समय अंग्रेजी के प्रसिद्धकवि शेली Adonis नाम की कविता पढ रहा था, जो बडी प्रभावशाली और सारगर्भित है। मैंने पडितजी का ध्यान इस कविता की तरफ दिलाया और कहा

कि यदि आपको समय मिले तो इस कविता का हिन्दी अनुवाद कर दें। पंडितजी ने बड़े प्रेम से कहा कि मैं इसके अनुवाद करने की यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। मैंने आपको वह पुस्तक दे दी और पूर्ण आशा थी कि पंडितजी उसका थोड़े काल में ही अच्छा छन्दोबद्ध अनुवाद करके हिन्दी-साहित्य के भण्डार की वृद्धि करेंगे, पर दैव से किसी का वश नहीं है। पंडितजी का शरीर ही नहीं रहा!"

श्रीयुत जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, आयुर्वेद-पंचानन सम्पादक-सुधानिधि (प्रयाग)

ने आपने श्रावण कृ० १२ सं० ७६ के पत्र में लिखा था—

"पण्डित सत्यनारायणजी का मेरा प्रथम परिचय कदाचित सम्वत् १९६७ में हुआ था। पण्डित केदारनाथजी भट्ट यहाँ बी० ए० की परीक्षा देने आये थे, सत्यनारायणजी भी उन्हीं के साथ थे। उस समय वे कदाचित एफ० ए० में पढ़ते थे। उनके सादे वेष को देखकर मुझे अनुमान भी नहीं हुआ कि ये अंग्रेज़ी पढ़ते अथवा जानते होंगे। केदारनाथजी ने आपका परिचय कराया और आपने भी अपना "भ्रमरदूत" और कुछ स्फुट कविताएँ सुनाकर आह्लादित किया। तभी से उनके साथ मेरा मैत्रीभाव और स्नेह सम्बन्ध दृढ़ हो गया। इसके बाद एक बार वे अकेले उसी वर्ष में मिले। उस समय मैं मकान के ऊपरी भाग में था। यह दोहा लिखकर आपने अपने आगमन की सूचना दी।

"निरत नागरी नेह रत रसिकन ढिग विश्राम।
आयो है तव मिलन को सत्यनरायण नाम॥"

प्रयाग में द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समय वे प्रयाग पधारे और अपने साथ के मित्रों के अनुरोध से उन्होने सम्मेलन के सम्बन्ध में पिछली रात में ही कुछ कविता तैयार की थी। दूसरे सम्मेलन के कार्य्यकर्ताओं ने उसे पढा न था और न पढ सकने का अवसर था। कविता पेंसिल से काट-कूट के साथ ऐसी लिखी हुई थी कि वे ही उसे पढ सकते थे। इसीलिये सम्मेलन के कुछ कार्य्यकर्ता उसे पढने देने पर सहमत न थे,क्योंकि उस समय तक आपका नाम भी सभी लोगों पर प्रभाव के साथ परिचित न था। उस समय मैंने अपने उत्तर दायित्व पर बाबू पुरुषोत्तमदासजी से आग्रह कर कविता पढने की आज्ञा दिलायी। कविता आरम्भ करते ही सबका सन्देह दूर हो गया। पहले कविता के सम्बन्ध में जिन्हें सन्देह था वे तथा अन्य उपस्थित सज्जन वाह वाह करने लगे। फिर तो धीरे धीरे आपकी कविता का आदर इतना बढा कि आप राष्ट्रीय कवि माने जाने लगे।

द्वितीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के साथ ही २६ सितम्बर से प्रयाग में तृतीय वैद्य सम्मेलन हुआ था। उसमें भी आपने स्वय स्वागत सम्बन्धी कविता पढी थी। कौशल से उसमें सभापति कविराज गणनाथ सेन, स्वागत सभापति पण्डित शिवराम पाण्डे और मत्री प०जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का नाम सन्निवेशित कर दिया था। कविता लोगों को बहुत प्रिय हुई। आपके नाम के साथ कविरत्न शब्द लगे

[ने से बहुतों को यह बोध हुआ कि आप बंगाल के कविराजों के [स]मान 'कविरत्न' उपाधिधारी वैद्य हैं। इसलिये आपके लिये [स]भापति बनाने के लिये कई सज्जनों की चिट्ठियाँ अगले वर्षों में [आ]ईं। मथुरा के पंचम वैद्य सम्मेलन के समय जब मैंने आपसे इस [ब]ात का जिक्र किया तब आप बहुत हँसे। प्रयाग के वैद्य सम्मे[ल]न के समय की एक बात मुझे अब तक नहीं भूली है। यद्यपि उस [प]र आजकल के लोग हँसेंगे, किन्तु मैं उसे लिख देना आवश्यक [स]मझता हूँ। जिस समय आप अपनी स्वागत की कविता पढ रहे [थे] और लोग तन्मय होकर सुन रहे थे उसी समय जब इस पद का [प्र]ारम्भ हुआ कि "शंकर दाजी शास्त्रि पदे की मुदित आतमा प्यारी। [य]ेहु यह आशीश देति है पुलकित तन बलिहारी" और लोगों ने [उ]से फिर दुहराने के लिये कहा, उसी समय सभा में एक सर्प निकल [प]ड़ा। उसके निकलते ही खलबली मचगई। किन्तु सर्प एक ओर [क]ोंडरी मार कर स्थिर भाव से फन निकाल बैठ गया। किसी ने कहा [स्व]यं स्वर्गवासी शंकरदाजी शास्त्री पदे हैं, किसी ने कहा चरक [भ]गवान हैं। जो हो,किन्तु जब तक यह पूरी कविता समाप्त नहीं हुई [त]ब तक वह सर्प वहीं स्थित रहा और ज्योंही कविता समाप्त होगई [त्य]ोंही वह भी एक ओर खिसक गया। मथुरा के वैद्य सम्मेलन के समय हिन्दी,साहित्य के प्रेमियों और सेवकों का भी एक छोटा दल उपस्थित होगया था। कविरत्न सत्यनारायणजी,नवरत्न पं० गिरिधर शर्मा झालरापाटन, अधिकारी जगन्नाथदास विशारद,गोस्वामी लक्ष्म-[ण]ाचार्य्य, पं० नन्दकुमारदेव शर्मा तथा पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी

"निरत नागरी नेह रत रसिकन हिग विश्राम।
आयो है। तव मिलन को सत्यनरायण नाम॥"

प्रयाग में द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समय वे प्रयाग पधारे और अपने साथ के मित्रों के अनुरोध से उन्होंने सम्मेलन के सम्बन्ध में पिछुली रात में ही कुछ कविता तैयार की थी। दूसरे सम्मेलन के कार्य्यकर्ताओं ने उसे पढा न था और न पढ सकने का अवसर था। कविता पेंसिल से काट-कूट के साथ ऐसी लिखी हुई थी कि वे ही उसे पढ सकते थे। इसीलिये सम्मेलन के कुछ कार्य्य-कर्ता उसे पढने देने पर सहमत न थे,क्योंकि उस समय तक आपका नाम भी सभी लोगों पर प्रभाव के साथ परिचित न था। उस समय मैंने अपने उत्तर दायित्व पर बाबू पुरुषोत्तमदासजी से आग्रह कर कविता पढ़ने की आज्ञा दिलायी। कविता आरम्भ करते ही सबका सन्देह दूर हो गया। पहले कविता के सम्बन्ध में जिन्हें सन्देह था वे तथा अन्य उपस्थित सज्जन वाह वाह करने लगे। फिर तो धीरे धीरे आपको कविताका आदर इतना बढा कि आप राष्ट्रीय कवि माने जाने लगे।

द्वितीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के साथ ही २६ सितम्बर में प्रयाग में तृतीय वैद्य सम्मेलन हुआ था। उसमें भी आपने स्वय स्वागत सम्बन्धी कविता पढी थी। कौशल से उसमें सभापति कविराज गए,नाथ सेन, स्वागत सभापति पण्डित शिवराम पाण्डे और मंत्री प०जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का नाम सन्निवेशित कर दिया था।कविता लोगों को बहुत प्रिय हुई। आपके नाम के साथ कविरत्न शब्द लगे

रहने से बहुतों को यह बोध हुआ कि आप बंगाल के कविराजों के समान 'कविरत्न' उपाधिधारी वैद्य हैं! इसलिये आपके लिये सभापति बनाने के लिये कई सज्जनों की चिट्ठियाँ अगले वर्षों में आईं। मथुरा के पंचम वैद्य सम्मेलन के समय जब मैंने आपसे इस बात का जिक्र किया तब आप बहुत हँसे। प्रयाग के वैद्य सम्मेलन के समय की एक बात मुझे अब तक नहीं भूली है। यद्यपि उस पर आजकल के लोग हँसेंगे, किन्तु मैं उसे लिख देना आवश्यक समझता हू। जिस समय आप अपनी स्वागत की कविता पढ रहे थे और लोग तन्मय होकर सुन रहे थे उसी समय जब इस पद का आरम्भ हुआ कि "शंकर दाजी शास्त्रि पदे की मुदित आतमा प्यारी। देखहु वह आशीश देति है पुलकित तन बलिहारी" और लोगों ने इसे फिर दुहराने के लिये कहा, उसी समय सभा में एक सर्प निकल पड़ा। उसके निकलते ही खलबली मचगई। किन्तु सर्प एक ओर गोंडरी मार कर स्थिर भाव से फन निकाल बैठ गया। किसी ने कहा स्वय स्वर्गवासी शंकरदाजी शास्त्री पदे हैं, किसी ने कहा चरक भगवान हैं। जो हो, किन्तु जब तक यह पूरी कविता समाप्त नहीं हुई तब तक वह सर्प वहीं स्थित रहा और ज्योंही कविता समाप्त होगई त्योंही वह भी एक ओर खिसक गया! मथुरा के वैद्य सम्मेलन के समय हिन्दी, साहित्य के प्रेमियों और सेवकों का भी एक छोटा दल उपस्थित होगया था। कविरत्न सत्यनारायणजी, नवरत्न प० गिरिधर शर्मा झालरापाटन, अधिकारी जगन्नाथदास विशारद, गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्य, पं० नन्दकुमारदेव शर्मा तथा पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी

प्रभृति मुझ पर कृपा कर उपस्थित हुए थे। इन सज्जों के कारण एक दिन दो घटे के लिये यह मालूम होने लगा कि यह वैद्य सम्मेलन नहीं बल्कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हो रहा है। × × × उस समय आप का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ा हुआ था। अपने गुरू को सम्पत्ति के अधिकारी होने के सम्बन्ध में आप जो मुकद्दमा लड रहे थे उसकी दौड धूप के कारण आप को स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ा था। मैंने उस समय उन्हें सम्मति दी थी कि आप यदि विवाह करलें तो आपके स्वास्थ्य में उन्नति हो सकती है। उस समय तो यह बात हँसी में उडा दी थी किन्तु एकाध पत्र में भी जब मैंने यही बात लिखी तब आपने मुझ से कहा था कि एक बार स्वास्थ्य-सम्पन्न होजाने पर यह होसकता है। मैं नहीं कह सकता कि विवाह करने के सम्बन्ध में मेरा कथन भी किसी अंश में कारणीभूत हुआ था या नहीं। विवाह के पश्चात्, केवल एक बार मेरी उनसे मुलाकात हुई थी। इन्दौर के साहित्य-सम्मेलन में न पहुँच सकने के कारण उनकी अन्तिम कविता उन्हीं के मुखसे सुनने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। उनका स्वभाव जो सर्वश्रुत है,उसका मुझे भी अनुभव है। उनका स्वभाव सरल था, वर्ताव पूर्णसभ्यता-युक्त था। बात करने का ढङ्ग मनोहारी था और मित्रों के साथ वे निष्कपट प्रेम करते थे। साधारणत हँसी-मजाक करने पर आप केवल मुस्करा देते थे और कभी कभी मीठी चुटीली बात उत्तर में सुना कर चुप हो जाते थे। किन्तु काव्य की आलोचना होने पर, विशेषकर ब्रजभाषा पर कुटिल आक्षेप होने पर, आप क्रोध के मारे आपे से बाहर भी

हो जाते थे, किन्तु अपने आलोचक से कभी अभद्र व्यवहार नहीं करते थे। कविता आपकी मधुर, रसीली चुटीली, भावपूर्ण और ऊँचे तथा सरल हृदय के उद्गारों से पूर्ण रहती थी। ब्रजभाषा में होने से वह अधिक कर्ण सुखद हो जाती थी। किन्तु सबसे बढ़ कर आपका कविता पढ़ने का ढंग अपने निज का और आकर्षक था। आपकी कविता आपके मुख से ही सुनने पर उसका आनन्द कई गुणा अधिक हो जाता था। आपकी कविता सच्चे हृदय से निकलती थी, इसीलिये हृदय में स्थान कर लेती थी।"

श्रीयुत शालिग्रामजी वर्म्मा (अलीगढ़)

लिखते हैं —

'कविरत्न पंडित सत्यनारायणजी से कई अवसरों पर साक्षात्कार होजाने के पश्चात् १९११ में एक बार प० बदरीनाथ भट्ट के यहाँ मेरा उनसे पूर्ण परिचय हुआ। इसी दिन से हम लोग एक-दूसरे को अधिक जाननेकी चेष्टा करने लगे। प्राय शाम को जब मैं, कुँवर नारायणसिंह तथा बदरीनाथ भट्ट टहलने जाते तो पंडितजी की तथा ब्रजभाषा के अन्य कवियों की कविताओं की हास्योत्पादक समालोचना किया करते थे। पर जैसे जैसे पंडितजी की कविताएँ मैं अधिक सुनने लगा मैं उस ओर आकर्षित होने लगा और कुछ दिनों मैं इस ठठोल-मंडली का उदासीन मेम्बर रहा। अब भट्टजी की वर्षा मुझ पर भी होने लगी और मैं सत्यनारायणजी का साथी बताया जाने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन हुए थे कि पंडितजी को दमा का

एक बार आषाढ़ की पूर्णिमा पर मैंने उनसे बहुत आग्रह किया कि आप गोवर्धन में गङ्गा स्नान के लिये मेरे साथ चलिये। अधिकारी जगन्नाथदास भी हमारे साथ जाने को राजी हुए, पर अन्त में वे किसी कारण से न जा सके और मैं तथा पंडितजी ही चल पड़े। उस समय आपने अधिकारीजी के विषय में एक मजेदार पद्य लिखा था। वह यह था —

"तुम्हें शतश धिक्कार।
तिरस्कार के योग्य आप हो अबसे सकल प्रकार॥
इक्के को छुड़वाया हमसे देकरधोखा भारी।
प्रण पूरा न किया पुनि तुमने इसी योग्य अधिकारी॥
देकर हमको धोखा ऐसा क्या फायदा उठाया।
यहाँ ठहर क्या मज़ा लेया कैसा चित्त भरमाया॥
पुण्यतीर्थ को छोड़ वृथा ही कोरा क्लेश कमाया।
चमचीचड़ चमगद्दड़ तुमने इसको वृथा सताया॥
कारण लिखिये ठीक अगर हो क्षमा प्राप्ति की आशा।
नहिं तो रसिया गाते फिरिये लिये हाथ में ताशा॥"

हम लोग रात को मथुरा में भरतपुर की विकालत में ठहरे और सवेरे ही स्नानकर गोवर्द्धन चल दिये। वहाँ पहुँचकर पंडितजी ने पुनः स्नान किया और परिक्रमा करने के पश्चात् हम लोगों ने गिरिराज के दर्शन किये। मेरे पिताजी ने पंडितजी से कहा था कि वे गिरिराज महाराज से प्रार्थना करें तथा इस अवसर पर प्रतिवर्ष यहाँ आकर दर्शन और परिक्रमा करें तो उनका दमा जाता रहेगा।

पडितजी ने बडी श्रद्धा और भक्ति के साथ गिरिराज के दर्शन कर यही प्रार्थना की और इसके बाद हम लोग घर लौटे। घर जाकर मेरी माताजी के बडे आग्रह पर पडितजी ने डरते डरते कलाकन्द और कलमी आम खाये। इसके पश्चात् दोपहर को भी बहुत कुछ डरते हुए भोजन किया। भोजन करने के पश्चात् वे सिर के दर्द की शिकायत करने लगे। मैंने उन्हें सो जाने की सलाह दी। प्राय १ बजे पडितजी सो गये और ऐसे बेहोश सोये कि ५ बजे बाद उनकी नींद खुली। दमा होने के बाद उन्हें यह पहला ही अवसर था कि वे इस प्रकार बेहोश सोये हों। मुझे भी तथा उनको भी इस पर बडा आश्चर्य्य हुआ। इस समय गज और ग्राह की लडाई समाप्त हो चुकी थी। पडितजी को जब यह मालूम हुआ कि सो जाने के कारण उन्होंने गज और ग्राह की लडाई नहीं देख पाई तो उन्हें खेद हुआ, पर जब उन्हें समझाया गया कि वास्तव में आज भगवानने उन्हें दमा रूपी ग्राह से उबारा है तो उन्हें बडी प्रसन्नता हुई। इसके बाद हम लोग गोवर्धन की परिक्रमा को गये और रात को ब्यालू करके सो गये। उस दिन रात को भी पडितजी ऐसे बेखबर सोये कि सबेरे ही उनकी आँख खुली। परमात्मा की कृपा से उनकी दमा की बीमारी दूर हो गई और पडितजी को यह विश्वास हो गया कि गिरिराज महाराज की कृपा से ही उन्हें आरोग्य प्राप्त हुआ इस घटना के पश्चात् सत्यनारायणजी प्रतिवर्ष आषाढ़ की पूर्णिमा पर गोवर्द्धन जाकर स्नान दर्शन तथा परिक्रमा किया करते थे।

अब कुछ मित्रों के आग्रह से सत्यनारायणजी विवाह के प्रश्न

पर भी विचार करने लगे थे। आगरे में गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा तथा चौबे अयोध्याप्रसादजी पाठक ने उन्हे इस विषय में बहुत कुछ समझाया बुझाया और हर तरह पर अकाट्य तर्कों द्वारा उन्हें निर्वाक करना आरम्भ किया। उधर श्रीयुत मुकुन्दराम (पंडितजी के श्वसुर) के चित्ताकर्षक पत्रों तथा कन्या के मनोमुग्धकारी गुणों के वर्णन ने पंडितजी का भी चित्त स्थिर नहीं रहने दिया। पंडितजी की स्वाभाविक सरलता तथा निष्कपट व्यवहार ने अब उन्हे धोखा देना शुरू किया और वे इस समय डावाँडोल अवस्था में रहने लगे। उनकी शारीरिक अवस्था के विचार से पंडित बदरीनाथ भट्ट, पं० मयाशङ्कर दुबे तथा मैं उनके विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव से असन्तुष्ट थे। गोवर्द्धन के निकट श्री स्वामी हरिचरणदासजी एक महात्मा रहते हैं। वह भी पंडितजी से बड़ा प्रेम करते थे। पंडितजी जब गोवर्द्धन जाते तो अवश्य उनके दर्शन करते और अपनी कविता उन्हें सुनाया करते थे। एक बार मैंने पंडितजी के सामने ही उनके विवाह सम्बन्धी विचार स्वामीजी पर प्रकट कर दिये। स्वामीजी ने भी उन्हे विवाह करने से मना किया। दैवगति बड़ी प्रबल है। भोले भाले सत्यनारायणजी विमुग्ध हो गये और हम लोगों के बहुत कुछ समझाने पर भी न माने। इस पर असन्तुष्ट हो हम लोगों ने उनके विवाह में न जाने की धमकी दी, पर कुछ बस न चलते देख हम लोगों ने मौन धारण कर लिया। इस अवसर पर सत्यनारायणजी ने जिन शब्दों में हम लोगों से क्षमा चाही वे

बड़े ही हृदयग्राही तथा कारुणिक थे और हमको विवश हो, दुखित-हृदय से, उन्हें विवाह कर लेने की अनुमति देनी पड़ी।

सत्यनारायणजी का विवाह हुआ ; पर हम लोग अपने विचारानुकूल उसमें सम्मिलित नहीं हुए। मैंने उन्हें जो बधाई सूचक तार भेजा था, वह यह है –

"Fair luck and fortune may on you attend I is the sincerest good wish of your loving friend"

विवाह से लौटने पर पंडितजी ने जो पत्र मुझे भेजा था उसकी नक़ल यह है—

भैया,

छमहु सब अपराध हमारे।
हम हैं सदा कृतज्ञ तुम्हारे॥

"सत्य"

इसके पश्चात् मैंने कभी विवाह सम्बन्धी विषय में सत्यनारायणजी से बातचीत नहीं की तथा इसके बाद, खेद है कि, मैंने धाँधूपुर के भी दर्शन नहीं किये। एक बार अपनी स्त्री के बहुत आग्रह करने पर मैंने पंडितजी से उनके विवाह के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किये थे जिनका उत्तर उन्होंने सन्तोषप्रद दिया था। उस समय उनकी धर्मपत्नीजी को हिस्टीरिया के दौरे होते थे। पंडितजी जानते थे कि मुझे इस बात से रंज हुआ है कि उन्होंने मेरा कहना नहीं माना, अतः कई बार आगरे में उन्होंने मुझे इस विषय में बहुत कुछ समझाया।

मैंने उनसे कहा कि मेरे हृदय में इस विषय में उनके प्रति कुछ भी ग्लानि नहीं है ; पर मेरे इस कहने से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ।

पंडितजी ने मुझसे एक दिन गॉव चलने को कहा। मैं उस समय एक निजी कार्यवश उन्हीं के बुलाने पर आगरे गया हुआ था। चौबे अयोध्या-सादजी के यहॉ दो दिन इस अवसर पर मैं रहा। जब मैंने गॉव जाने से मना किया तो पंडितजी ने कहा—"अवश्य ही तुम मुझसे रूठे हुए हो जो गॉव नहीं चलते।"

अन्त में इस विषय में मुझे केवल यही लिखना पडता है कि भावी प्रबल होने के कारण ही पंडितजी ने हम लोगो की सम्मति कि अवहेलना की। इस विषय में मुझे कोई ग्लानि नहीं है। हॉ, पश्चात्ताप अवश्य है और रहेगा भी।

मुझे कई एक ऐसे अवसरों का स्मरण है जब उन्हें कई सज्जनों की दो एक बातों से क्षोभ हुआ था। परन्तु जब मैंने उनसे इस विषय में कहा तथा उन सज्जनों की कडी आलोचना की तो उन्होंने बडे मधुर तथा विनम्र शब्दों में मुझे समझाया, पर मुझे उससे सन्तोष नहीं हुआ। परन्तु पंडितजी के उदार हृदय ने उन सज्जनो को तुरन्त क्षमा कर दिया और उन लोगों पर कभी यह प्रकट नहीं होने दिया कि उन लोगों ने पंडितजी की आत्मा को दुखित किया था। इस अवसर पर मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि पंडितजी के मित्र कहलानेवाले कुछ सज्जनों ने अपनी संकीर्णता तथा क्षुद्रता का ऐसा परिचय दिया कि जिसका बडा भारी परोक्ष प्रभाव पंडितजी

पर पडा। अपने स्वर्गवास के कुछ मास, पूर्व से ही उनको एक प्रकार का विराग सा हो चला था। मैंने अपने पत्रों में उन्हें इस विषय में समझाते हुए उनकी इस अवस्था को प्राय "स्मशान वैराग्य" लिखा था। इसके उत्तर में पंडितजी ने एक बार लिखा था—'सभव है हमारा यह वैराग्य स्मशान में ही समाप्त हो'। मुझे खेद है कि इस अवसर पर मैं उनसे बहुत दूर था और भट्टजी भी प्रयाग में थे, इसलिये हम लोग पंडितजी के विचारों को पूर्णतया जानने में असमर्थ रहे। पत्रों में उन्होंने इस विषय पर स्पष्टतया कुछ नहीं लिखा। इस विषय में उनकी भाषा साकेतिक तथा मार्मिक हुआ करती थी जिसका गूढ अर्थ समझना मेरे लिये प्राय असम्भव था। इन पत्रों से यह अवश्य भासित होता था कि उनके हृदय पर किसी प्रकार का रंज है। पर कई बार लिखने पर भी मैं इस रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सका।

सत्यनारायणजी जहाँ अपने मुग्धकारी गुणों द्वारा जन साधारण के श्रद्धाभाजन और प्रिय थे वहाँ उसके साथ ही उनकी कविता के माधुर्य्य और लालित्य ने भी उन्हें इस कीर्ति के प्राप्त करने में कम सहायता नहीं दी थी। सम्भव है कि मेरा लिखना इस विषय में पक्षपातपूर्ण समझा जाय पर मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी के वर्तमान कवियों में स्वाभाविक कवि होने का गौरव उन्हें ही प्राप्त था।

सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आगरे पधारने के अवसर पर जो

में कुछ अन्तर न था। दोनों स्थान एक से थे। उसपर भट्टजी ने स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त के इस पद्य के आधार पर—

"बढे दिल की क्यों कर न अब बेकरारी।
जो मर जाय यों मैंस लाला तुम्हारी।"

यह कविता पढी—

"बढे दिल को क्योंकर न अब बेकरारी।
जो यों खर्च होवे चवन्नी हमारी।"

भट्टजी की इस कविता पर बडी हँसी आई। खेल समाप्त हो जाने पर भट्टजी ने मेरा परिचय सत्यनारायणजी से कराया। साथ ही उन्होने ऊपरवाला वाक्य पढा। इसके पीछे चवन्नी अधिक खर्च हो जाने के विषय में सत्यनारायणजी ने भी कुछ कविता की थी जो पूरी आज तक मेरे देखने में नहीं आई। उसका एकाध पद्य पण्डित बद्रीनाथजी भट्ट ने मुझे सुनाया था और मुझसे कहा था—"पूरी कविता सुनाई जायगी तो आप नाराज हो जॉयगे।" बस उस दिन से ही मेरी सत्यनारायणजी से मित्रता हुई। आगरे में रहते समय वे प्राय मुझसे मिला करते थे। "आर्य्यमित्र" छोडने के बाद मैं विहार प्रान्त के पुराने अखबार "विहार-बन्धु" में चला गया। वहॉं से मेरा सत्यनारायणजी का पत्र व्यवहार नहीं हुआ। हॉं, भट्टजी प्राय अपने पत्र में कोई न कोई बात सत्यनारायणजी के विषय में लिखा करते थे और उसमें राममूर्ति के तमाशे में चवन्नी अधिक खर्च हो जाने की चर्चा प्राय रहती थी।"

१९०८ से लेकर सन् १९१० के दिसम्बर तक सत्यनारायणजी से मेरी भेंट नहीं हुई। सन् १९१० में प्रयाग में बहुत भारी प्रदर्शिनी हुई और साथ ही कांग्रेस का अधिवेशन भी हुआ। मैं बांकीपुर से कांग्रेस और प्रदर्शिनी देखने के लिये प्रयाग पहुँचा और उधर सत्यनारायणजी भी आगरे से आये। कांग्रेस पण्डाल में, कांग्रेस के अधिवेशन से एक दिन पहले, मैं एक बंगाली सज्जन से बातें कर रहा था। बातें समाप्त होने पर उक्त बंगाली सज्जन ने मुझसे मेरा पता माँगा! मैंने अपना एक कार्ड उक्त बंगाली सज्जन को दिया। मेरे पीछे सत्यनारायणजी खड़े हुए थे, पर मुझे इसकी कुछ खबर न थी। बङ्गाली सज्जन के चले जाने के पीछे सत्यनारायणजी धीरे से सामने आकर खड़े हो गये और झुककर मुझे नमस्कार किया। मेरी स्मरण शक्ति में एक बड़ा भारी दोष है। वह यह कि मनुष्य के पहचानने में वह मुझे सदैव धोखा देती है जिसके कारण एक दिन मैं अपने प्यारे बन्धु बदरीनाथजी तक को नहीं पहचान सका था! सत्यनारायणजी को भी मैं नहीं पहचान सका था। सत्यनारायणजी ने पहले जो नमस्कार किया वह भी व्यङ्ग पूर्ण था पर अब तो उनकी व्यङ्गोक्ति का कुछ ठिकाना ही न रहा। उन्होंने मजाक करते हुए ब्रज भाषा मिश्रित देहाती बोली में मुझसे कहा—"हम तौ गमार आदमी हैं, हमारे पास विजिटिङ्ग-फिजिटिङ्ग कार्ड नाँय।" उनके मुख से इस प्रकार के शब्दों की लड़ी निकलती हुई देखकर मैं पहचान गया कि ये और कोई नहीं, सत्यनारायणजी हैं। हाथ जोड़कर मैंने उनसे क्षमा माँगी, पर वहाँ तो बुरा मानने से रोकार न था। वहाँ तो

'विजिटिङ्ग कार्ड' और वर्तमान सभ्यता की दिल्लगी थी—और खासी दिल्लगी थी। × × × जब जब सत्यनारायणजी से मिलना होता था तब तब साहित्य समाज, काव्य और देश सम्बन्धी बातें होती थीं। जब बातें समाप्त हो जातीं और बिछुड़ने का समय होता तब वे मुझसे व्यङ्ग-पूर्ण शब्दों में कहते—"अजी आप एडीटर हैं, हम गमार देहाती आदमी ठहरे। आप इसकी आलोचना अच्छी कर सकते हैं।"

सत्यनारायणजी की अनेक बातें इन पंक्तियों के लिखते समय याद आ रही हैं और उनकी मधुर मूर्ति आँखों के सामने नाच रही है। क्या कहूं? अधिक कहने-सुनने की अपने में सामर्थ्य भी नहीं है।"

श्रीयुत गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्यजी

लिखते हैं—

"कविरत्नजी का मेरा साक्षात् संवत् १९६६ में ब्रज यात्रा में हुआ था। मथुरा की स्टेशन पर हम लोगों ने एक दूसरे को अपनी अपनी कविता सुनाई थी और इस प्रकार हम लोगों का प्रेम मिलन हुआ। यद्यपि समय की कमी के कारण विशेष बातचीत न हो सकी, पर पारस्परिक स्नेह की डोर से मन बँध गये थे इसलिये जब तब पत्र व्यवहार होता रहा। जब कविरत्नजी उत्तर रामचरित का अनुवाद करने लगे तब उन्होंने मुझे सूचना दी थी कि 'ब्रजभाषा में उत्तर रामचरित्र उदय हो रहा है। देखें आप प्रेमियों तक उसका कैसा प्रकाश पड़ता है'। मैंने हर्ष प्रकट करते हुए लिखा कि सत्य पर

भगवान भी रीझते हैं , फिर मनुष्य क्यों न रीझेंगे। इसके पश्चात् छपा हुआ रामचरित्र अवलोकन किया। जिधर देखें उधर ही उस की सुगन्ध फैलती हुई दीख पडी। यहाँ तक कि खडीबोली के आचार्य मान्यवर द्विवेदीजी ने कविरत्नजी के उत्तर रामचरित्र के विषय में सन्तोष प्रकट करते हुए यह कह दिया कि भाषा रसीली है। इस पर मैंने भी कविरत्नजी को बधाई दी। इसके उत्तर में उन्होंने लिखा कि भवभूति के उत्तर रामचरित्र में मैंने कौन सी भलमनसी की? उल्टा मक्खिका के ठौर मक्खिका कर दी। इस प्रकार विनोद पूर्ण उत्तर दे उन्होंने अपनी निरभिमानता दर्शाई थी।

जब आपने सुना कि लखनऊ के पञ्चम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति श्रीयुत श्रीधर पाठक जी होंगे तब आप बडे चाव से लखनऊ जाने के लिए तैयार हुए और मुझसे भी कहा —चलोगे? मैंने कहा कि मैं तो गोवर्धन में विचरने जाता हूँ। यदि हरि इच्छा हुई तो पहुँचूँगा। विशेष तो व्रजविहार की ही इच्छा है। तब आपने कहा—"मैं तो व्रजभाषा की पुकार लैके जरूर जाऊँगो। और कछू नॉय ना व्रजभाषा सुरसरी की हिलोर में सबको भिंजाय तो आऊँगो।"

भरतपुर की हिन्दी साहित्य समिति के द्वितीय अधिवेशन में नवरत्न श्रीयुत गिरिधर शर्मा, कविरत्नजी और अनेक सज्जन तथा मैं भी सम्मिलित हुआ था। समिति के उत्साही सभासद श्री जगन्नाथदासजी विशारद के उद्योग से, एक दिन कवि सम्मेलन हुआ था, जिसमें पुराने ढङ्ग के उत्तम उत्तम कवि भी सम्मिलित थे। इस दिन बडा ही आनन्द आया। मैंने 'सुमित्रा का लक्ष्मण को -

शीर्षक कविता पढ़ी। उस पर गिरिधरशर्मा नवरत्नजी ने कहा कि जबलपुर के सम्मेलन में यह कविता फिर अवश्य पढ़ी जावे। तत्पश्चात् गिरिधर शर्माजी को "सुकन्या" नाम्नी कविता पढ़ी गई। ये खड़ीबोली की कविताएँ थीं। इनके बाद कविरत्नजी ने "माधव तुमहुँ भये बैसाख" और "माधव आप सदा के कोरे" इन पद्यों को बड़े मधुर स्वर में पढ़ा। इसका जिक्र करते हुए श्रीयुत अधिकारी जगन्नाथदासजी ने मुझसे कहा था —

"उस वक्त मीटिङ्ग में अशान्ति थी और काम शुरू नहीं हुआ था। मैंने खड़े होकर कहा –'ब्रजभाषा के कविरत्न और खड़ीबोली के नवरत्न दोनों यहाँ मौजूद हैं। आशा है कि दोनो अपनी अपनी कविता का रसास्वादन करावेंगे।'

सत्यनारायणजी ने कहा – "नाय नाय, पंडितजी मेरे बड़े हैं, इनके सामने मैं नाय बोलु गो।" फिर गिरिधर शर्माजी के अनुरोध करने पर सत्यनारायणजी ने "मानुष हौं तो वही रसखान" इत्यादि से कविता पाठ प्रारम्भ किया। उपस्थित जनता ने उसे बड़े प्रेम पूर्वक सुना।" उस समय सभा प्रेम में निमग्न हो गई। उस समय भरतपुर के एक वृद्ध कविने भी अपने कवित्त सुनाये थे। उनके एक कवित्त का पिछला चरण मुझे स्मरण है। वह यह था—

"चन्द्र को चीर चारु राधिका बनायो है।"

वास्तव में वह कवि बड़े जानकार थे। जितने कवित्त उन्होंने कहे थे उन सबके अलङ्कार वे बतलाते गये थे। कविरत्नजी ने खड़े

होकर कहा था—"मृदुल काव्य के ऐसे-ऐसे प्रोफेसरों से जब तक शिक्षा न ली जायगी तब तक प्रेम-रस बरसाने की गति नूतन कवियों में कैसे आ सकती है ?"

कविरत्नजी विनोदी बड़े थे। गिरिधरशर्माजी की खड़ीबोली के कविता पाठ के पश्चात् अपनी कविता पढ़ने के पूर्व कविरत्नजी ने कहा था - "सज्जनो, जाके मुँह में रसीली दाखें लग गई हैं वाइ कडुई निबौरी कैसे भावेंगी !" यह विनोद उन्होंने खड़ीबोली और व्रजभाषा के पद्यों के विषय में किया था।

कविरत्नजी खड़ीबोली में भी कविता कर लेते थे, पर आप व्रजभाषा के पूरे पक्षपाती थे। एक बार मैंने उनसे पूछा - "इस समय खड़ीबोली की कविता का प्रवाह इतना क्यों बह रहा है ?" आपने उत्तर दिया। —"पुरानी कविता में धड़क्के गड़क्के छुड़क्के इत्यादि हैं इस कठिनता के कारण तथा पुरानी व्रजभाषा में श्रृङ्गार के कारण"। मैंने कहा —"फिर आप पीछे क्यों लौटते हैं ?" कविरत्नजी ने जवाब दिया —"जिसके लिये विश्वनाथ व्रजनाथ हुए उस व्रजभाषा से मुँह मोड़ना परमात्मा को रुठाना है। इस समय व्रजभाषा में पद्य ऐसे होने चाहिए कि पुराना जटिलपना न रहे और भाषा व्रज की होते हुए भाव नूतन हों "

इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में जब ये वहाँ गये थे तो मुझसे मिलते ही उन्होंने कहा था "लेउ जे "मालती माधव" के प्रूफ देखौ, पर पैले मोइ कछू खाइबे को देउ, मैं भूखन मर रह्यौ

हो।'' इसी तरह विनोद करते हुए कुछ फल खाकर कविरत्नजी ने कहा - 'यह सम्मेलन अच्छी सान को दीखि रह्यौ है। जा कौ कारण गान्धीजी कौ यश और यहाँ के कार्य्यकर्तन कौ प्रेम है।''

फिर आपने मुझसे कहा —'उत्तर रामचरित्र और "मालती माधव" तो आपने देखई लयौ, पर भरतपुर की हिन्दी-साहित्य समिति के मन्त्री श्री अधिकारी जगन्नाथदास के पास मेरी "हृदय तरंग" है। सो उनसे कहिके वाइ छपाइ डारियो, क्योंकि वा में मेरे भावना भरे पद्य हैं।"

यह सुनकर मैंने कहा—"आप तो मेरे ऊपर ऐसा भार डाल रहे हैं मानों आप कहीं जा रहे हों।" कविरत्नजी की आँखों में आँसू आ गये और वे कहने लगे—"मोइ तो ब्रज में ही छाडके अन्त कहूँ अच्छी नाय लगैगौ। मैं तो ब्रज में ही आऊँगो क्योंकि मेरी ब्रज की ही वासना है।"

मेरी उनकी ये बाते श्री सेवाप्रसाद वकील के बँगले के बगीचे में हुई थीं। इतने में एक घोडा गाडी आई जिसमें बैठकर हम दोनों प्रदर्शिनी देखने के लिये चले गये।

जब सत्यनारायणजी ने सम्मेलन के अवसर पर अपनी कविता पढी तो उसके पूर्व रसखान के कवित्त पढे थे।'

"जो खग हौं तो बसेरो करौं वहि कालिन्दी कूल कदम्ब के डारन।"

कविता पाठ करने के बाद आप मेरे पास आकर मेरी आधी कुर्सी पर बैठ गये। मैंने कहा— 'आपने रसखान के कवित्त क्यों पढे,

उनका यहाँ क्या अवसर था ?" कविरत्नजीने कहा—"मैंने सम्मेलन के श्रोताओं के सामने ये कवित्त इसलिये कहे हैं कि जिससे ये सब साक्षी हों कि चलती बार अवश्य, भगवान,से, सत्य ने, चाहे किसी रूप में हो, ब्रजवास ही माँगा था"। मैंने कहा कि बस रहने दीजिये, मृत्यु का विनोद मुझे नहीं सुहाता।" आपने कहा—"हरि इच्छा।"

इन बातों से अब मुझे निश्चय हो रहा है कि जैसे कविरत्नजी विद्वान, सरल स्वभाव और अपने देश प्रेम भाव के दृढ भक्त थे वैसे भगवानके भी प्रेमी भक्त थे जो अपनी मृत्यु को जानकर सावधान हो गये थे।"



मेरी तीर्थ-यात्रा

३० अगस्त १९२४



त काल का सुहावना समय था। सवा छै बजे थे। बादल घिरे हुए थे। कभी कभी दो चार बूंद भी पड जाती थीं। मैं ताँगे में बैठा हुआ धाँधूपुर की ओर चला जारहा था। अकेला ही था।

सत्यनारायण की मृत्यु के बाद यह मेरी चतुर्थ धाँधूपुर-यात्रा थी। सत्यनारायण के कई मित्रों से मैंने धाँधूपुर चलने की प्रार्थना की थी पर उनके हृदय में वहाँ चलने के लिये कोई विशेष उत्साह या प्रेम नहीं पाया गया था। सत्यनारायणजी का एक Enlargement बडा चित्र मेरे साथ था और उनकी यह जीवनी तथा जीवन चरित्र का मसाला भी मेरे साथ ही था। चित्र को मैं बडी सावधानी से लेजारहा था। ताँगेवाले से मैंने कह दिया था—"देखो भाई,ताँगा धीरे धीरे चलाना, कहीं मेरी तसवीर टूट न जावे।" नगर के कोलाहल से दूर किले के पास होता हुआ मेरा ताँगा चला जारहा था और मैं सोच रहा था—"सत्यनारायणजी के कोई मित्र साथ क्यों नहीं आये? उसी समय मुझे कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ का एक पद्य याद आगया—

"एकला चलो, एकला चलो, एकला चलोरे।
यदि तोर डाक सुने केउना आसे,
तबे एकला चलोरे॥"*

मैं सोच रहा था—यह वही सड़क है जिसपर कई बार पूर्व अपनी कविता पढ़ते हुए धुन में मस्त सत्यनारायण प्राय दीख पड़ते थे। हाँ, कभी यही आकाश उस ब्रज कोकिल के मधुर स्वर से गुंजारित होता था। आगे मुझे वृक्षों के निकट एक प्याऊ दीख पड़ी। ग्रीष्म ऋतु में धाँधूपुर से आते हुए सत्यनारायणजी यहाँ कभी कभी पानी पिया करते थे। क्या इसी का ध्यान में रखते हुए उन्होंने ग्रीष्म-गरिमा में लिखा था—

ताप बस ह्वै अत्यन्त अधीर कहु कुलिलत नहिं पहरा गाय।
द्रुमन तर पी प्याऊ कौ नीर, फिरत जिय जरति तऊ ना जाय॥

सड़क के दोनों ओर नीम वृक्ष थे जो सत्यनारायण के साथ ही साथ बड़े हुए थे। मैं कल्पना कर रहा था कि कहीं सत्यनारायण इन्हीं के पास से निकलकर यह कहने लगें—"क्यों भैया, मेरी ही कुटी पै चलतौ का? चलौ।"

मार्ग में कई बार मेरा हृदय भर आया और आँखें डबडबा आईं। लगभग एक घंटे में धाँधूपुर पहुँचा।

---

* अर्थात्—यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई न आवे तो अकेले ही चलो, अकेले ही चलो, अकेले ही चलो।

सत्यनारायण का चित्र और उनकी जीवनी का सामान उन्हीं के मन्दिर में जाकर रक्खा। उस समय मैं सोच रहा था—"अहा ! क्या ही अच्छा होता यदि मैं कभी सत्यनारायणजी के सामने ही धांधूपुर आता !"

ताँगा धांधूपुर पहुँचा। गाँववालों को मैंने सत्यनारायणजी के मन्दिर पर बुलाया। गेंदालाल जाट, राधाकृष्ण, रामहेत, तुलाराम तथा अतरसिंह इत्यादि अनेक आदमी वहाँ आये। जब मैंने सत्यनारायण के चित्र को वहाँ खोला तो गाँववाले बोले—"बस महाराज, जामें तो जान डारिबे की देर है। जे तौ मानों बोले इ देतें।" पर सत्यनारायण के बालसखा रामहेत की आँखों में आँसू थे ! उन्हें देखकर मैंने कहा—"बस मेरा परिश्रम सफल है। सत्यनारायण के किसी मित्र का उनकी पवित्र स्मृति में दो आँसू बहाना, इससे अधिक मुझे चाहिए ही क्या ?"

बड़ी देर तक बातचीत हुई। जब सत्यनारायण के प्रेमी साथी उनके गुणों का वर्णन अपनी मधुर ग्रामीण भाषा में कर रहे थे, कई बार उस करुणामय दृश्य से मेरा हृदय द्रवित होगया। लेकिन जब गेंदालाल जाट ने बड़े अभिमान से कहा—"महाराज नाम तौ सत्यनारायण कौ ई भयौ, वैसे काव्य तौ हमने मिलि-मिलि कें करी ही। आधी वाकी है, आधी मेरी।" मुझे हँसी आगई और मैंने कहा—"क्या आप भी कविता करते थे ?" वह जाट बोला—"अरे महाराज, हम का करतें, सबकुछ करतो ! सत्यनारायण ने बाईस जगह अपनी किताबन में मेरे नामकी छाप रक्खी है।"

बात यह थी कि सत्यनारायणजी अपनी कविता प्राय गेंदालाल को सुनाया करते थे। कभी किसी ग्रामीण शब्द का अर्थ भी पूछ लेते थे। एक बार 'ढवान' शब्द का अर्थ उन्होंने पूँछा था। बस इसीमे गेंदालालजी भी अपने को "कविरत्न' समझने लगे हैं। हाँ, यह ठाकुर साहब की नम्रता है कि वे इस कीर्ति को स्वय न लेकर अपनी 'सरसुती' को अर्पित करते हैं! अस्तु मैंने कहा—"अब मुझे—सत्यनारायणजी के स्थानों को दिखलाइए।" एक आदमी मेरे साथ हो लिया। उसने एक कोठरी को दिखलाकर कहा—"यह सत्यनारायण की कोठरी है। इसी में माता के साथ वे रहते थे।" मैंने सोचा क्या इसी में बैठकर, माता की मृत्यु के बाद, उन्होंने वह पद्य बनाया था—

"जो मैं जानतु ऐसी माता सेवा करत बनाई,
हाय हाय कहा करूँ मात तुव टहल नहीं कर पाई !"

मन्दिर की छतपर जाकर मैंने वह अटारी देखी जहाँ बैठकर सत्यनारायण कागज पेंसिल लिये हुए कविता किया करते थे। सामने अनेक वृक्षों के सुन्दर सुन्दर पत्ते दीख पडते थे। यहीं बैठकर सत्यनारायण ने लिखा था—

"शीतल प्रभात बात खात हरखात गात
धोये धोये पातनु की बात ही निराली है !"

कोठरी के सामने की छत पर पत्थर की दो पटियाँ बिछी हुई थीं। हरियाली ही हरियाली दीख पडती थी। सामने प्रेमपूर्ण कविता का साक्षात्स्वरूप—ताजबीबी का रोज़ा—दिखाई देता था। कवि की

प्रतिभा के विकास के लिए भला इससे अधिक उपयुक्त स्थान अं कहाँ मिल सकता था ?

क्या इसी छत पर से वह ध्वनि कभी निकली थी ?--

"भयो क्यों अनचाहत को सग !"

फिर हम उस कमरे में गये जहाँ सत्यनारायण ने अपनी अन्ति स्वास ली थी कमरा टूटा फूटा और गिरा हुआ था। राधाकृष्ण कहा—"मरते समय सावित्री सामने खडी थी। सत्यनारायण इशारे से उसे सामने से अलग करा दिया।"

श्रीमती सावित्री देवी ने अपने १६।१२।१८ के पत्र में लिख था—"मैंने कई आवाज दी, सब निष्फल। जोर से घबराकर मैं अपना हाथ सिरहाने की तरफ पट्टी परदे मारा। एकदम चौंकक मेरी ओर देखा और सदा के लिये हतभागिनी से विदा लेली !"

६ वर्ष बाद, उसी स्थान पर—स्थान नहीं, ब्रजभाषा के अन्तिम कविके तीर्थ स्थान पर—खडे होकर मैं सोचने लगा—"सत्यनारायण की उस अन्तिम दृष्टि में क्या भाव भरे थे ?"

प्रिय पाठक ! क्या आप इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं ? अ कल्पना कीजिए और मुझे विदाई दीजिए।



श्रीगाधी-स्तव

(१)

जय जय सद्गुन सदन अखिल भारत के प्यारे।
जय जगमधि अनवधि कीरति कल विमल उज्यारे॥
जयति भुवन विख्यात सहन-प्रतिरोध सुमूरति।
सज्जन सम भ्रातृत्व शान्ति की सुखमय मूरति॥
जय कर्मवीर त्यागी परम आतम त्यागि विकास-कर।
जय यश सुगंधि बिरतन करन गाधी मोहनदास वर॥

(२)

जय परकाज निबाहन कृतबन्दी गृह पावन।
किन्तु मुदित मन वही भाव मंजुल मनभावन।
मातृभक्त जातीय भाव रक्षण के नेमी।
हिन्दी हिन्दू हिन्द देश के साँचे नेमी।
निज रिपुहू की अपराध नित छमत न कछु शका धरत।
नव नवनीत समान अस मृदुलभाव जग हिय हरत॥

(३)

जयति तनय अरु दार सकल परिवार मोह तजि।
एकहि व्रत पावन साधारन ताहि रहे भजि॥
जय स्वकार्य तत्परतारत अरु सहनशील अति।
उदाहरन करतव्य परायनता के शुचमति॥

जय देशभक्ति-आदर्श प्रिय शुद्ध चरित अनुपम अमल।
जय जय जातीय तड़ाग के अभिनव अति कोमल कमल॥

(४)

जय विपत्ति में धैर्य्य धरन अविकल अविचल मन।
दृढ़ व्रत शुच निष्कपट दीन दुखियन आस्वासन॥
जय निस्स्वारथ दिव्य जोति पावन उज्जलतर।
परमारथ प्रिय प्रेम बेलि अलबेलि मनोहर॥
तुम से बस तुमही लसत और कहा कहि चित भरैं।
सिवराज प्रताप उ० मेजिनी किन किन सों तुलना करैं॥

(५)

एक ओर अन्याय, स्वार्थ की चिन्ता बाढ़ी।
अत्याचार अपार घृणित निर्दयता ठाढ़ी॥
ऊपर ओर मनुषत्व स्वत्व की मूरति निर्मल
कोमल अति कमनीय किन्तु प्रतिपल प्रण अविचल॥
यदि देवासुर सग्राम में विदित जगत की नीति है।
बस किंकर्तव्य विमूढ़ बहु भूलि परस्पर प्रीति है॥

(६)

अघुहि सारथी बने कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सों बतरात विहँसि त्रयताप-विमोचन।
धीरज मय विधि देत यही पुनि पुनि समझावत।
दैन्यपलायन एकहु ना। मोहि रन में भावत॥
इक निमितमात्र है तू अहे क्यों निज चित विस्मय धरै।
गोपालकृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै॥

(७)

यहि अवसर जो दियो आत्मबल को तुम परिचय।
लखो निरकुश शक्ति भई मुदमई सत्य जय॥
जननी जन्मभूमि भाषा यह आज यथारथ।
पूत सपूत आप जैसो लहि परम कृतारथ॥
नवि मोहन मुखचद तव याके हृदय उमग है।
अघतापहरन मन मुद भरन लहरन भाव तरग है॥

(८)

निज कोमल वाणी सों हिन्दू जाति जगावौ।
नवजीवन यहि नीरस मानस में उमगावौ॥
अब या हिन्दी को सिर निर्भय उच्च उठावौ।
सुभग सुमन या के पद पदमनु चारु चढावौ॥
यह नम्र निवेदन आप सों जिनको प्रेम अनन्य है।
हूँ न्यौछावर तव चरनु पै हम जीवनधन धन्य है॥

सत्यनारायण

भयंकर खाँसी की दवाई का नुसखा

१ भाग बबूल की अन्तर छाल।

१० भाग जल।

१/१६ भाग काली मिर्च।

१/८ भाग मुलहठी (मधुयष्टि, जेठीमधु) चूर्ण।

१/८ भाग बबूल का गोंद।

१/८ भाग मिश्री।

इसके अवलेह से कास श्वाँस में आश्चर्यजनक उपकार होता है।

सत्यनारायण